पप्पू

रांगेय राघव से याराने के पांच वर्षों का सफरनामा

मनमोहन ठाकौर

ज म 26 जुलाई 1923 आगरा (उ० प्र०)

शिक्षा एम० ए०(इतिहास), आगरा विश्वविद्यालय (1945)

मातभाषा गुजराती । पितभाषा राजस्थानी (हाडौती) ।

अ य भाषाएँ हि दी अंग्रेजी उर्दू एव बगला ।

प्रकाशित पुस्तकें एक नास्तिक की तीथयात्रा (हिमालयी यात्रा वणन)
सौमित्र सकल्प (कविता सग्रह)
सलेक्टेड सालेलिक्वीज़ (35 हि दी कविताओ क अंग्रेज़ी अनुवादो का सकलन)

सम्पादन सचयन (कहानी सग्रह)
सक्रा त (अनियतकालीन लघु पत्रिका)
रूपाम्बरा (अंग्रेज़ी)
पोइम्स आव नवल

अनुवाद उर्दू बगला, गुजराती असमिया, अंग्रेजी स हि दी मे एव हि दी से अंग्रेज़ी म प्राय दो सौ स अधिक कविताओ का तथा गुजराती बगला एव अंग्रेज़ी स प्राय 15 नाटको का हि दी म अनुवाद ।

सम्प्रति जून 1988 स चीन गणराज्य के विदेशी भाषा प्रकाशन गह, पेइचिङ म हि दी परामशदाता ।

सम्पक 5 ए ग्रीक चच रोड कलकत्ता 700026

एकमात्र वितरक
पंचशील प्रकाशन
फ़िल्म कालोनी, जयपुर 302003

पप्पू मनमोहन ठाकोर / PAPPU MANMOHAN THAKORE (An Account of his years with Rangeya Raghava)/ प्रथम संस्करण 1991 / सर्वाधिकार मनमोहन ठाकोर / मुद्रक शांति मुद्रणालय, विश्वासनगर, दिल्ली-32 / प्रकाशक अलीक प्रकाशन, 'भूमिका' 2 घ 26, जवाहर नगर, जयपुर-302004/मूल्य पचास रुपये।

फोट या राजा की मण्डी स्टेशन पर उतरकर मुझे तांगे-स्कूटर को बाग मुजफ्फर खा घुमाकर बल्कावस्ती ले जाने की इच्छा होती है। किन्तु तभी याद आ जाता है कि अब बाग मुजफ्फर खा ही कहा रह गया है ? अब तो उसे डा० रागेय राघव मार्ग बना दिया गया है।

अतएव यही निश्चय किया गया था कि प्रस्तुत सस्मरणो के माध्यम म रागय राघव को, वजरिए पप्पू के, देखने का प्रयास किया जाए। इसीलिए पहला खण्ड लिखने का भार मुझे दिया गया था क्योकि 1939 म आगरा के 'सेंट जोन्स कालेज' म दाखिला लेने के बाद वहा बिताए गए छ वर्षों के दौरान पप्पू और मैं काफी निकट आ गए थे। हम दोनो का जन्म 1923 मे हुआ था, उसका जनवरी म और मेरा जुलाई म। 1940 मे हम दोनो ही सत्रह वष के 'अण्डरटीन' थे। हम दोनो ही तत्कालीन राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक परिस्थितियो से समान रूप से प्रभावित होत रहते थे। इसी काल मे पप्पू का रचनाधर्मी साहित्यकार भी बडी तजी स करवटें लेने लग गया था और तभी प्रगतिशील लेखक सघ की आगरा शाखा की स्थापना भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनो प्रकार बहुत सहायक सिद्ध हुई थी।

यो तो प्रत्येक बालक विपुल सम्भावनाओ को साथ लिए ही जन्म लेता है, किन्तु उसम निहित कुछ शक्तियो का विकास उसकी पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितिया के अनुरूप ही हो पाता है। पप्पू भी इस सामान्य नियम का अपवाद नही था। एक दाक्षिणात्य प्रवासी, तमिल भाषी, तत्कालीन भरतपुर राज्य के एक गाव वैर, के माफीदार, विद्वान, पडित, ब्राह्मण परिवार मे जनमे पप्पू की मानसिकता को गढने मे इनम से प्रत्येक तथ्य का बडा हाथ रहा था। अतएव डॉ० रागेय राघव तथा उनके रचना ससार को समझने के लिए उनकी इस पष्ठभूमि को समझ लेना भी आवश्यक हो जाता है।

यही सब सोचकर मैंने इन सस्मरणो को लिपिबद्ध करना आरम्भ किया था। इन्हें लिखते समय मेरी एक अन्य चेष्टा भी रही थी। मैंने पप्पू के माध्यम से स्वय अपने को भी खोजा है, ठीक उसी प्रकार जसे प्रत्येक कवि अपनी कविता म और कथाकार अपने कहानी-उपन्यासो म अपने और अपने वक्त को तलाशता रहता है। स्वीकार करू कि मैंने यह चेष्टा जानबूझ कर

ही की है और इसके लिए मुझे कोई सफाई देने की आवश्यकता महसूस नही हो रही।

हा, इस बात का मैंने अवश्य पूरा पूरा ध्यान रखा है कि इन सस्मरणो मे ऐसी एक भी घटना का समावेश न हो जिसका मैं चश्मदीद गवाह न रहा होऊ। पप्पू के लिए न तो मैंने सर्टिफिकेट बटोरे हैं और न उसको सीढी बनाकर अपना कद ऊचा करने की चेष्टा ही की है। मैं अपनी 5 फुट 2 इच की काया मे ही बहुत खुश हू। और जहा तक पप्पू का प्रश्न है, उसको अतिरिक्त महिमा से मण्डित कर देख पाना मेरे लिए सचमुच बहुत कठिन है। मैं उसका 'फैन' नही था। वह मेरा यार था। और यारा के बीच न कोई छोटा होता है, न बडा।

एक बात और। तीन वष पूव एक अत्यन्त आत्मीय, दिग्गज साहित्य कार मित्र ने इन सस्मरणो की पाडुलिपि पढने के पश्चात् मेरे एक अन्य मित्र को लिखे गए पत्र मे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था "यह ठाकुर साहब के जीवन का आगरा खण्ड है जिसमे रागेय राघव भी कही कही आ गए हैं।" सयोगवश वह पत्र मैने भी पढ लिया था, और तभी स यह वाक्य मुझे रह रहकर चेतावनी देता रहा है। बहुत सोचा है इस सबध मे, बहुत विचार किया है और फिर भी अन्तत यही तय रखा कि पाडुलिपि जस की तस रहे, उसम कोई परिवतन न किया जाए। अर्थात, यदि इसम पप्पू 'आउट ऑफ फोकस' हो जाता हो, तो हो जाए और यदि वह फोकस बार-बार मुझ पर केन्द्रित हो जाता हो, तो होता रहे। उसे आप मेरे फोटो खीचने की तकनीक का अज्ञान मान लें, मुझे कोई ऐतराज नही। परन्तु ईमानदारी की बात यह है कि जब देखने वाला मनमोहन ठाकोर है तो पप्पू को भी उसी के सदभ मे इन सस्मरणो म आना पडेगा। यह डॉ० रागेय राघव का जीवन चरित्र नही है, केवल पप्पू की यादो को दुहराने का प्रयास मात्र है।

इसके प्रकाशन से सबधित सभी समस्याओ का भार प्रियवर अशोक शास्त्री ने अपने व्यस्त कधो पर लकर मुझे जो चिन्ता विमुक्त कर दिया है, उसके लिए मात्र शाब्दिक आभार प्रकट कर मैं उनके महत्त्व का कदापि हीन नहीं करूगा। हा, हजारो मील दूर, विदेश मे बैठा मैं उनका अपन अन्ततम

के आशीर्वाद अवश्य भिजवाना चाहूगा। और अन्त मे अनक धन्यवाद मेरे प्रिय मित्र श्री चिरजीलाल चमडिया को जिन्होने अपने चाय बागान, फासकोवा टी एस्टेट, के शान्त तथा सुरम्य प्राकृतिक परिवेश मे पद्रह दिन तक आतिथ्य प्रदान कर मुझे इस पुस्तक को समाप्त करने का अवसर ही नहीं दिया, अपने सुरुचिपूण साहित्यिक सुझावो से भी लाभान्वित किया था।

8512, फ्रेंडशिप होटल,
पइचिङ (चीन)

—मनमोहन ठाकौर

उनको मुबारक जिन लोगो को
सच्चे दोस्त और यार मिले,
मेरे लिए तो एक वही था
सच्चा था या झूठा था ।

—फिराक गोरखपुरी

प्रोफेसर अन्ताणी के यहा हर साल नवरात्रि का पर्व बडी धूमधाम से मनाया जाता था। अष्टमी के दिन हवन होता था और उस दिन हम सब का प्रसाद लेन का निमत्रण रहता था। प्रो० अन्ताणी सेन्ट जॉन्स कालेज मे कैमिस्ट्री के प्राध्यापक थे। लम्बे से दुबले से। गोरे गट्ट। लम्बा कोट, चूडीदार पाजामा और सिर पर काठियावाडी पगडी। अपनी काठियावाडी पगडी तथा तीखी आवाज म बेलौस, बेबाक बातें करने और चुस्त-दुरुस्त अग्रेज़ी म धाराप्रवाह, धारदार, व्यग्यपूर्ण भाषण देने के लिए सारे आगरे मे प्रसिद्ध थे। विद्यार्थियो के प्रति उनका स्नेह असीम था। शायद इसीलिए अनुशासन के प्रति उनकी दृष्टि भी अचूक रहा करती थी। बावजूद इसके, वे बेहद लोकप्रिय थे। उनक घर पर निमन्त्रित होना इज्जत की बात हुआ करती थी।

तो प्रो० अन्ताणी के घर हवन-समाप्ति के बाद बडे बूढे बातचीत मे लगे थे और हम बच्चे धमाचौकडी मचाने मे। यह बात होगी शायद 1935 36 की। तभी, मेरे मामाजी ने नीली नेकर और सफद खुले कॉलर की कमीज पहने एक लडके को दिखाते हुए कहा, 'यह लडका मद्रासी है। इसका बडा भाई हमारे ही कॉलेज म पढता है। बडा अच्छा स्टूडेन्ट है वह। उसकी अग्रेज़ी तो बस कमाल की है।'

उन दिनो हम सबका विश्वास था कि अग्रेज़ी तो सिफ 'मद्रासियो' की ही कमाल की होती है। इसमे तो कोई आश्चय की बात नही थी। पर 'उस' मद्रासी लडके को देखकर तो मैं सचमुच चौंक पडा था। यह लडका, और मद्रासी! गोरा चिट्टा!! नाक-नक्श, चाल-ढाल, वज़म-

कतम, कहीं स भी तो 'मद्रासी' नहीं लग रहा था वह । यह चक्कर क्या है ?

पता चला कि साहबजाद को पप्पू कहा जाता है । अन्ताणी साहब के पडोस म ही रहत हैं य लाग । तीन भाइ हैं—आचार्या ब्रदस । पूरा नाम कोई नही जानता । 'मद्रासी नाम काई जान भी तो नही सकता । गुडुम-गुडुम गुडुम, कुछ-कुछ आचार्या । बस, उस दिन हम बच्चा की चचा का विषय यही गोरा भभूका 'मद्रासी' और उसकी 'मद्रासी' जबान ही बने रहे ।

यह था रागय राघव स मेरा प्रथम साक्षात्कार । उस समय मेरी उम्र थी 11-12 की और पप्पू रहा होगा 12-13 का । पर यह मात्र साक्षात्कार ही रहा । उसके बाद पप्पू न ता दिखाई पडा और न कभी रूबरू बातचीत करन का ही मौका मिला । परिचय होने म अभी 5 6 साल की देर थी ।

मैं राजामण्डी म अपन ननिहाल म रहता था । राजामण्डी और बाग मुजफ्फर खा म वैस तो कोई खास फासला नही था । यही कोई 15 मिनट लगते थे पैदल जाने मे । किन्तु, उस जमाने मे जीवन की गति प्राय मुहल्ले पाड़े तक ही सीमित रहती थी । हर मुहल्ले की अपनी एक विशिष्ट जीवन प्रणाली थी । अपना तौर तरीका था । यहा तक कि एक ही शब्द को विभिन्न मुहल्लो मे विभिन्न तरह स बोला जाता था । आग चलकर, घनिष्ठता बढ़ जाने पर, मेरा पप्पू का यह प्रिय शगल बन गया था कि लोगो के उच्चारणो के ढग स हम उनके मुहल्लो का अनुमान लगाया करते थे ।

इस हिसाब से, राजामण्डी का जीवन बनिया प्रधान था और बाग मुजफ्फर खा का खत्री-प्रधान । अतएव काई खास जीवित सम्पर्क इन दो मुहल्लो मे था नही ।

सम्पर्क-सूत्र था सेण्ट जान्स कालेज । हमारे घर के सारे विद्यार्थी सेंट जॉन्स म ही पढते थे । और पप्पू के दोनो बड़े भाई भी इसी कॉलिज के छात्र थे । अतएव, हमारे घर पर वर्ष मे तीन बार कॉलेज मगजीन आती थी । उसी क द्वारा जाना था कि पप्पू के सबस बड भाई—श्री टी० एन०

ऐल० ऐन० आचाय—पी० सी० ऐस० (प्राविन्शियल सिविल सर्विस) की परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर किसी अच्छे सरकारी ओहदे पर नियुक्त हो [illegible] थे।

उस जमाने म पी० सी० ऐस० म चुन लिया जाना [illegible] मुश्किल होता था। आगरा जैसे मुफस्सिल शहर म आई० [illegible] दशाब्दियो मे एक आध हो पाता था। अतएव पी० सी० [illegible] निम्न मध्यवर्गियो की निगाह मे आज के आई० ए० [illegible] कहीं अधिक हुआ करती थी। तो, 'आचार्या परिवार' [illegible] दार' परिवारो म से एक गिना जाने लगा था।

कॉलेज मैगजीन के हिन्दी विभाग मे एक [illegible] बी० आचाय के नाम से छपी। पर उनका [illegible] कि 'आचाय जी' आगे चलकर कोई बडा [illegible] छायावादी कविताओ का। और आचाय [illegible] कम झाकना दिखाई देता था। न ही [illegible] था। तो फिर उन कविताओ को [illegible] गम्भीरतापूर्वक लेता? ऐस एम [illegible] खच्चियो भर मिल जात हैं!

आगरे के किसी कवि [illegible] सुना था। डा० पद्मसिंह [illegible] श्री हरिशकर शर्मा [illegible] थे। नागरी प्रचारिणी [illegible] सूर-जयन्ती, नागरी [illegible] आयोजित किये जा [illegible] अपनी व्रज तथा [illegible] आचाय को तो [illegible] सुनने भी वह [illegible]

टी० एन० [illegible] मे।

दाखिला लिया। खीच खाच कर पाच फुट का भी नही था तब। आख पर माइनस सविन का चश्मा। पीछे लटकती थी 8 9 इच की चुटिया जिसे गाधी टोपी मे दुबकाये फिरता था। नये लोगो और अपरिचित माहौल मे मैं आज तक सहसा सहज नही हो पाता। 'फस्ट ईयर फूल' बनाये जाने के किस्से, होश सभाला तभी से सुनता आया था। और मेरी हुलिया कुछ ऐसी थी कि मर सहपाठियो न पिछले एक साल स कहना शुरू कर दिया था कि, 'बटा सण्ट जॉस मे जा रहा है। वहा लडके तो लडके, लडकिया भी बनाएगी तुझे।" और लडकियो का यह खौफ मेरी रग रग म समा गया था। मेरा आत्म-सम्मान लडकियो द्वारा बुद्धू बनाये जाने को किसी शत पर तैयार न था।

सो, तरकीब यह निकाली कि जसे ही कोई पीरियड खाली मिला कि मैं अपने घर का रुख करता। तेज तज चलने से प्राय 8-10 मिनट मे घर आ पहुचता और फिर कक्षा शुरू होने के दस बारह मिनट पहले वापस कॉलिज। सोचता था कि न मैं कॉलिज मे रहूगा और न मुझे कोई बना पायगा।

पर आखिर कब तक चलती यह दिनचर्या! व्यवधान आना ही था, और वह आया हमार कालज क अग्रेजी के अध्यापक, और हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक श्री प्रकाश च द्र गुप्त की माफत। एक दिन घर स जरा जल्दी ही लौट आया था मैं। वक्त गुजारने के लिए कॉलज के नोटिस बोड पर टगे काम-बेकाम के सभी नोटिस दुबारा तिबारा पढ रहा था कि गुप्ता साहब ने पीछे से कधे थपथपाये। मुडकर देखा तो आश्चय (और कुछ-कुछ भय) क मारे हक्का-बक्का रह गया। उस जमाने म अध्यापकगण वाकई आदर तथा सम्मान क पात्र हुआ करते थे। गुप्ता साहब तो हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक के रूप म भी ख्याति अर्जित कर चुक थ।

अतएव मैं उनकी ओर मुह बाये दखता खडा रहा। आश्चय इसलिए और भी अधिक हो रहा था क्योकि गुप्त साहव हमे पढ़ाते नहीं थे। वे भला हम नय छात्र को क्यो पहचानन लग!

गुप्ता साहब ने मुझे उनके द्वारा सचालित 'फ्राइडे' की अगली बैठक में शरीक होने का निमत्रण दिया। हमारा कॉलेज जुम्म के जुम्म एक बजे

बन्द हो जाता था। आगरा मुस्लिम प्रधान शहर था। जुम्मा की नमाज़ मे मुसलमान छात्र शामिल हो सकें इसलिए उन दिनो स्कूल-कॉलेज एक बजे ही बन्द हो जाते थे। इसी का फायदा उठाकर प्रो० गुप्त ने, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की भाति, हमारे कालेज मे भी 'फ्राइडे क्लब' स्थापित किया था। इसके अधिकाश सदस्य होते थे कुछ एम० ए० के छात्र, चुने हुए प्रोफेसर और 3 4 इन्टर बी० ए० के विद्यार्थी। इसकी सदस्यता का अपना एक रौब था।

मुझे इस अप्रत्याशित निमन्त्रण पर कुछ तो आश्चर्य हुआ और कुछ कही पर गर्व का अनुभव भी। बहरहाल, अगले शुक्रवार को जब मैं प्रो० गिडियन के कमरे पर पहुचा तो वहा टी० एन०बी०आचार्य को भी देखा। वह तब थर्ड ईयर का छात्र था।

उस शाम आचार्य से मात्र परिचय हुआ, नितान्त औपचारिक परिचय। बातें कुछ नही हुइ। फिर भी, अब कॉलेज के कारिडार मे, या सामूहिक प्रार्थना से बाहर निकलते, यदि उससे भेंट हो जाती तो 'हलो' का आदान प्रदान होने लगा।

कुछ दिनो बाद ही प्रारम्भ हुइ प्रथम सत्र की परीक्षायें। सामूहिक प्रार्थना के बाद कॉलेज हाल मे प्रत्येक कक्षा और प्रत्येक विषय म प्रथम एव द्वितीय होने वाले छात्र छात्राओ के नाम प्रिंसीपल रवरेन्ड केनन टी० डी० सले स्वय घोषित करते थे। उस सत्र मे अपनी कक्षा मे मैं द्वितीय हुआ। फस्ट हुई थी मेरी एक सहपाठिनी—कुमारी नेलसन।

हॉल से बाहर निकलने पर अनेक बधाइया मिली और साथ ही मृदु मज़ाक भी सुनाई पडा—"अबे, लडकी से हार गया। अगली बार फस्ट आना है तुझे।"

इन बधाई देने वालों मे आचाय भी था। प्राय 2 बजे मैं अपनी कक्षा स निकल, घर की ओर रवाना हो रहा था कि आचाय दिखाई पडा। वह भी बाहर जा रहा था। अपने घर नही, कालेज के पास ही एक चाय की दुकान पर। वह अकेला नही था। उसके साथ दो और विद्यार्थी थे।

मैं नजरें झुकाये उनके पास से, तज-तेज कदम बढाता, गुजरा तो आचाय ने, "अरे, सुनो तो जरा" कहकर मेरी ओर एक मीठी मुस्कान

फेंकी। उसके लहजे में न तो व्यंग्य था, न शैतानी। पर होठों पर खेलती मुस्कराहट के कोनों पर मेरे सशंकित हृदय को 'बनाने' का भाव दीख पड़ा।

मेरी इस एक क्षण की हिचकिचाहट को वह भाप गया। अपने स्वर को और भी सहज बनाता बोला, 'तुम्ही से कह रहा हू बरखुरदार। घबरा क्यों रहे हो? चलो तुम्हें चाय पिलायें। आज सुबह तुम्हारे नम्बर सुनकर बहुत अच्छा लगा। पर यार ये संकिंड कैकिंड का क्या चक्कर है? और वो भी उस काले नमक से?"

"काला नमक? मैं समझा नही।' मैं खूब समझ रहा था पर कहता कैसे? उधर आचाय ने एक जोर का ठहाका मारा। और लोग भी हस पड़े। मुस्कान तो मेरे होठो पर भी खेल गई थी पर मैंने उसे स्पष्ट नही होने दिया। सीनियरो के समक्ष लडकियो को लेकर मजाक ऐ-जाय नही करना चाहिए यह उन दिनो की सवमा-य परम्परा थी।

"फिडडी भाई को जानते हो?' सहसा आचाय ने प्रश्न किया।

"फिड्डी भाई? यह कौन हैं?"

'लो, तीन महीने से कालेज मे हो और फिडडी भाई को नही जानते? अमा, करते क्या रहे हो इस बीच? फिडडी भाई, माने, फ्रेडरिक वासमैन। साइ-स डिपाटमे-ट के डिमा सट्रेटर। उन्हें नही जानते?" आचाय ने पूछा।

'जी नाम तो सुना है उनका। पर कभी काम नही पडा उनसे।"

'कोई बात नहीं। जल्दी ही मिलवा देंगे हम। बडे यारबाश आदमी हैं। मिलोगे तो तबीयत खुश हो जायगी। वे ही तुम्हारी उस क्लास फैलो को क्या नाम है उसका अरे भाई वही जो इस बार फस्ट आई है"

मिस नेलसन, ईवा क्वीनी नेलसन," मैंने नाम बताया।

तभी आचाय का एक साथी मुझे घूरते हुए 'ह ह, ह ह ह ह ह' हसा और मेरी पीठ पर हाथ मारते हुए बोला, "यार, हो तो इतने से, पर हो काफी घुटे हुए। पूरा नाम रट रखा है उसका। शाबास बरखुरदार, नाम करोगे।'

"उस्ताद बुरी बात है। बच्चे से मजाक नही होगा। आज तो पहला दिन है। देखो बेचारा कैसा लाल हो गया तुम्हारी बात सुनकर," आचाय

मरी हिमायत मे बाला।

हम साथ-साथ चल रहे थे। बाग मुजफ्फर खा का चौराहा आया तो मैंने विदा लेनी चाही। आचाय ने मेरी एक न सुनी। मुझे उनके साथ चाय की दुकान पर जाना ही पडा—धडकता दिल और लरजते पाव लिये।

इस चाय की दुकान को वे लोग रेस्तरा कहते थ। दूकानदार था नत्थीलाल। उसका लडका था बाबू। वही चाय, सिगरेट और पान 'सर्व' करता था। उसकी दुकान कहलाई 'बाबू का रेस्तरा'। आचाय के सम्पूण व्यक्तित्व के निर्माण और विकास के साथ इस 'बाबू के रेस्तरा' का अविच्छिन्न सबध रहा है। जैसा था 'तीन वष' के भगवतीचरण वर्मा के साथ मिया जगाली का।

टूटी मज और उसके दोनो ओर बिछी दो लम्बी बैंच। दीवारो पर वर्षों म एक बार की गई पुताई और उन पर टगे दो-तीन मडियल कलेंडर। इन बैंचों पर दस बजे स आ जमते थे आचाय और उसके मित्र। सभी सण्ट जॉन्स कॉलिज के विद्यार्थी। जिसका पीरियड शुरू हो जाता, वह उठकर सडक पार कर क्लास म चला जाता। जिसकी कक्षा सम प्त हो जाती वह उसकी जगह आ बठता। चाय और सिगरेट के दौर चलते रहते और चलता रहता एक दूसरे की टाग खिचाई का अखण्ड प्रवाह। फूटते रहत ठहाके और बहस मुबाहिसो के बीच होते रहत तनाव खिचाव। मगर, उन सब तनावो खिचावो का अन्त होता गहरे मजाको मे ही। मजाल है कि कोई वहा से झगड कर चला जाए।

प्रात काल दस बजे से शुरू होन वाली इस बैठक का पहला दौर चलता रहता था शाम के साढे चार-पाच बजे तक। फिर अधिकाश लोग चल पडते 'ठडी सडक' पर हवा खाने। बाग मुजफ्फर खा के चौराहे से चलते-चलत मडली पहुचती दिल्ली दरवाजे के पास तालाब के किनारे। वहा प्राय पौन एक घण्ट बैठकर हवा खाई जाती। कभी कभी आचाय अपनी, या किसी और की, कविता सुनाता। और, सात बजते न बजते सब लोग अपने-अपने घर की राह लेते।

इस नित्य नैमित्तिक क्रम मे सम्मिलित होने के लिए आवश्यक था केवल एक गुण—प्रत्युत्पन्नमति का प्राचुय, मजाक को मजाक की तरह

लेकर, बिला शर्मो लिहाज के रेकों व तुर्को मजाक मे ही जवाब दे पाना। नहले पर दहला। आप म अगर वह क्षमता है तो फिर 'बाबू के रेस्तरा' और 'पप्पू की बठक' के दरवाजे आपके लिए खुले थे फिर चाहे आप 'फस्ट ईयर फूल' ही क्या न हो। मगर, जो वहाँ आप मजाक का बुरा मान गय, या सिफ हिनहिनाना कर ही खीसें निपोर दी, तो गय काम स। फिर तो आपका वही हाल हागा जा मोहनलाल तिवारी का हुआ था। बेचारा फोथ ईयर म था जब उसने इस गिरोह मे शामिल हाना चाहा था। दो दिन उस्ताद से लगाकर जगदीश तक सभी इस लिहाज स निहायत शराफत के साथ पश आए कि वह मेरा दूर का रिश्तदार था। मगर सब्र की भी तो इन्तिहा होती है। तीसरे दिन तक हज़रत की कलई खुल चुकी थी। सो, नातका ब द कर दिया गया उसका और तिवारी जो बगटूट भागा है कि पूछिये मत।

खर, इस रेस्तरा की बात तो बाद मे होगी। फिलहाल वापस उसी बात पर आ जाऊ—वही पहल दिन की मुलाकात की।

बहुत कुछ अशो म हमारा 'लव एट फस्ट साइट' हो गया था। झेंपना, बगलें झाकना और मजाक का मजा न ले पाना मरे दुर्गुण कभी नही रहे। अतएव, बिस्मिल्लाह ही दुरस्त हो गयी। हम लोग तेजो से एक दूसरे के करीब आत गये—लाखन सिंह, आचाय, उसके बडे भाई किच्चू, विजय सिंह आदि सभी अच्छे मित्र बन चले।

अब मरा आत्म विश्वास भी क्रमश बढ़ने लगा था। एक ओर प्रोफसर लोग मुझसे 'हलो' करने लगे थे और दूसरी ओर कॉलेज के सीनियरो ने भी मुझे लिफ्ट देना शुरू कर दिया था, इस बाबू क रेस्तरा वाले गिरोह के कारण। क्लास म प्रथम आ गया था, छ माही परीक्षा म। इस तरह, मेरी चादी ही चादी हो रही थी।

और तभी एक और घटना घट गई। कॉलिज की 'रूरल डेवेलपमेण्ट सोसाइटी' के तत्वावधान म आगरा के आस पास के किसी गांव म महीने मे दा बार रविवार को, जाकर विद्यार्थी 'ग्राम-सुधार' का कायक्रम चलाते थे। गाव की सफाई सोक-पिट खोदना, दवाइया बाटना और प्रौढ़ शिक्षण —ऐसे ही कुछ सुधारवादी किस्म के कायक्रम चला करते थ। उस वप हम

कायक्रम का चाज मिला था प्रोफेसर नीहार रजन सरकार को। कोई तीस-बतीस की उम्र रही होगी 'सरकार साहब' की। खासे 'छोकरे' लगते थे वे। बगाली क्रिश्चियन। रहते गम्भीर थे, पर मुस्कुरात तो आसपास धूप छिटक जाती।

तो, साइकिल पर सवार हम 10 12 लडके और साथ मे सरकार साहब, सर्दी की सुहाती धूप मे चले जा रहे थे। मेरे साथ चल रहा था मेरा सहपाठी अमरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य। सडक के किनारे एक गाव पडा, लोगों की भीड दिखाई पडी कि मेरे अन्दर मे बेसाख्ता निकल पडा एक नारा—इन्कलाब। अमरेन्द्र ने स्वर मिलाया—जिन्दाबाद। लोगो ने हमारी ओर देखा। मैंने फिर से नारा लगाया और इस बार सिर्फ अमरेन्द्र ही नही वे लाग भी पुकार उठे—'जिन्दाबाद'।

मेरे साथ के लडके, और सरकार साहब, भी अब पीछे मुड कर मुझे देखने लगे थे। मेरा उत्साह सरकार साहब की उपस्थिति का ध्यान आते ही, ठडा पड गया। प्राफेसर थे वे, ईसाई थे वे, और जमाना लडाई का था। अग्रेजा का राज था। काग्रेस, और गैर कानूनी कम्यूनिस्ट पार्टी, युद्ध के खिलाफ थी। स्व० भगत सिह के दिय हुए नारे—इकलाब जिन्दाबाद—पर अब तक कम्यूनिस्टो का करीब करीब 'कॉपीराइट' हो चुका था। अनजाने मे ही मैंने इस नारे द्वारा अपने कम्यनिस्ट पार्टी से सम्बधित होने की घोषणा सी कर दी थी। डर लगना स्वाभाविक था।

पर जब देखा कि सरकार साहब मुस्कुरा रहे थे, तो मजा आ गया। जोश दूना हो गया। अब तो दूसरा गाव नजदीक आया तो और भी ऊचे गले से मैंने नारा लगाया—"साम्राज्यवादी युद्ध मे—ना एक पाई, ना एक भाई"। इस बार दूसरे लडके भी मेरे साथ थे। नारे लगते गए, सरकार साहब मुस्कुराते गए। हम लोग बेहद प्रसन्न थे माना हमने कोई बहुत बडा और खतरेभरा काम अजाम दे दिया हो।

गाव पहुचने पर, जैसे ही मौका मिला सरकार साहब मुझे एक ओर ले गए। कुछ ही देर मे हम दोनो एक दूसरे को जान गए। आगरे मे कम्यूनिस्ट नेताओ की गिरफ्तारी के बाद, हम 4 5 विद्यार्थी और 6 7 दूसरे लाग, ही कम्यूनिस्ट पार्टी के नाम लेवा पानी देवा रह गए थे।

हमने अपना छोटा-सा सगठन बरकरार रखा था। स्टूडेण्टस फेडरेशन के माध्यम से हम लोग जो कुछ समझ मे आता, करते रहते थे। एकदम कटे हुए थे, शहर से भी और केन्द्र स भी। फकत पदमकुमार जन के जरिए 'कम्यूनिस्ट' पत्रिका की प्रतिया मिल जाया करती थी—वही थी हमारी रहनुमा।

अतएव, जब पता चला कि सरकार साहब को भी कम्यूनिस्ट पार्टी मे गहरी दिलचस्पी है, तो मरी प्रसन्नता का पार नही रहा। साथ ही, एक गहरा भय भी समा गया। कही सरकार साहब एजेन्ट प्रावोकेटयोर तो नही हैं, अंग्रेजी सरकार के जासूस? ईसाइया मे कम्यूनिस्ट कहा से आया? सो, उस समय तो मैंने उन्हे कुछ गोलमोल जवाब दकर पिण्ड छुडाया। थोडी और तहकीकात कर लू फिर इनक प्रति अपना रवैया तय करूँगा, यह साच कर।

किन्तु, अगले दिन ही सरकार साहब ने मुझे शनिवार को प्रो० प्रकाश चन्द्र गुप्त के घर साढे छ बजे तक स्टडी सर्किल' मे शरीक होन का निमत्रण दिया। पूरे सप्ताह मेरे पाव जमीन पर नही पड रहे थे। प्रो० गुप्ता के घर पर जान का निमत्रण! मुझ जस फस्ट इयर के विद्यार्थी को!

मदिया कटरा मे रहते थे गुप्ता साहब। तोत के ताल' के सामने। बगला-नुमा मकान। स्वच्छ परिच्छन्न परिवश। ट्रे मे रखा था टी सट। और, कमरे मे उपस्थित थे प्रो० सरकार, प्रो० गिडियन, बिजय सिंह ('उस्ताद' लाखन सिंह के बडे भाई और कॉलज यूनियन के प्रेसीडेण्ट) तथा पाच छ अन्य जाने अनजाने चेहरे। उन सबके बीच भयानक हीनता-बाध स ग्रस्त हाकर बैठा था मैं।

वैसे 'स्टडी सर्किल कोई नयी बात नही थी मरे लिए। नवी कक्षा से ही कम्यूनिस्ट कायकर्ताओ के सम्पक म आ चुका था। न जाने कितनी बार कॉमरेड महादेव नारायण टडन ने 'स्टडी सर्किल' लिए होगे। माक्सवाद का ककहरा प्राय मुखस्थ हा चुका था मुझे।

अतएव जब सरकार साहब स्टडी सर्किल ल चुके और प्रश्नोत्तरों की बारी आई तो मैंने कुछ प्रश्न पूछे जिनस वे भली भाति समझ गए कि मैं इस क्षेत्र म नितान्त नौसिखिया नहीं हू। उसी शाम स प्रारम्भ हो गए

गुप्ता साहब और सरकार साहब के साथ पार्टी स्तर के मेरे सम्बन्ध।

इस घटना का यहां उल्लेख केवल इसलिए किया है कि इसी के बाद मैं आचार्य की अंतरंग गोष्ठी का सदस्य बन सका। विजय सिंह ने घर जाकर मेरी और मेरे प्रश्नों की चर्चा की अपने छोटे भाई, 'उस्ताद' लाखन सिंह से और शायद लाखन ने बात आगे चला दी आचार्य से। सो, जब अगली बार मैं बाबू के रेस्तरां पर पहुंचा तो आचार्य ने अगले रोज मुझे अपने घर आने का निमन्त्रण दिया। उन दिनों ग़ैरकानूनी कम्यूनिस्ट पार्टी और कम्यूनिज्म दोनों का ज़िक्र बड़े आदर के साथ होता था—विशेष कर शिक्षित वर्ग में। भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद के बाद यदि कोई क्रान्तिकारी समझे जाते थे तो कम्यूनिस्ट ही। मेरठ षड्यन्त्र केस की स्मृति उस समय तक ताज़ा थी, और आगरा में डॉ० महादेव नारायण टंडन तथा किशनलाल जोशी ने युवकों में साम्यवाद को 'इज़्ज़तदार' बना दिया था।

आचार्य का घर बाग मुज़फ्फर खां में था। कॉलेज के पास ही। वहां पहुंचा तो 'उस्ताद' तो मिले ही, और भी कुछ 'विभूतियों' के दर्शन हुए—सुन्दरसिंह, किशन खन्ना[1] और किच्चू। किच्चू, अर्थात् टी० ऐन० के० आचार्य, पप्पू के बड़े भाई। भाई नम्बर दो। एम० एस सी० के विद्यार्थी। गठा, छरहरा बदन, क़द लम्बे और बेहद पुर मज़ाक। दस मिनिट बात कीजिए तो यारी दोस्ती पर उतर आए।

मैं पहुंचा तो सुन्दर सिंह और उस्ताद में आंखों में इशारे हुए और दोनों के ओंठों पर खेल उठी शरारती मुस्कान। उधर आचार्य ने भी इस मुस्कान को भांप लिया और मैंने भी। आचार्य ने आंख तरेरकर 'शैतानी नहीं होगी' का इशारा किया और मैं निहायत अप्रतिम हुआ अपना सम्भ्रम दुरुस्त रखने की चेष्टा करने लगा।

उस दिन मुझसे कोई विशेष बात नहीं हुई। इधर-उधर की, सामान्य शिष्टाचार वाली बातें, जो प्रायः पहली मुलाक़ात पर हुआ करती हैं—कहां रहते हो, अलावा कोर्स की किताबों के और क्या पढ़ते हो वगैरा-वगैरा। हां, मुझे अनेक कई बातों की जानकारी हुई उस दिन। जैसे कि,

---

1 श्रीकृष्ण चन्द्र खन्ना

पप्पू बेहद सिगरेट पाता था और सुदर सिंह तथा क्च्चू बीडी फूक्ते थ। बीडी खत्म हा जाएँ तो क्च्चू पप्पू म बडे दास्ताना ढग से सिगरट माग लिया करता था। और यह भी कि पप्पू ने एक उपन्यास लिखना शुरू किया है।

कुछ ही दिना बाद प्रारम्भ हो गयी गर्मी की छुट्टिया। 1940 की गर्मी। लडाई चल भी रही थी और नही भी। हिटलर ने फ्रास पर पद्रह दिन मे ही कब्जा कर लिया था। डकक से अग्रेज फौजें बचकर निकल आइ थी। और अब दानो पक्ष ज़रा चुप थे। जिसे वाद मे 'फोनी वार' की सज्ञा दी गयी, महायुद्ध उस दौर से गुजर रहा था।

इन छुटिटयो के दौरान मैं नित्य, बिला नागा, मध्याह्न म, 12 और 1 के बीच आचाय क घर पहुच जाता था। वह एक उपन्यास लिख रहा था—उसका प्रथम उपन्यास, 'घरौदे'। रोज लिखता और रोज सुनाता। वडा मज़ा आता था उस सुनन म क्योंकि उसके सभी पात्र या तो जाने पहचाने छात्र थे या दो तीन छात्रो की विशेषताए लिये एक अलग ही पात्र बन गये थे। अधिकाश घटनाए अत्य त सुपरिचित थी जो आचाय की सहज धाराप्रवाह और ओजपूर्ण भाषा के माध्यम से अभिनव प्रभाव उत्पन्न करती थी। इससे पूव आचाय मुख्यत कविताए लिखा करता था, और बीच बीच मे, जायका वदलन के लिए, छोटी कहानिया। उपन्यास पर पहले-पहल हाथ माज रहा था वह।

मैं दिन के बारह साढे बारह के बीच पहुँचता, किवाड पर दस्तक देता और पदिमनी भाभी (सबसे वडे भाई की पत्नी) दरवाज़ा खोलती और गलियार स ही आवाज़ लगाती—'पप्पू, यार मिड-डे विज़िटर हैज एरा इण्ड।' आचाय अपने कमरे से उठकर बैठक मे आ जाता। वहा उसका स्थान नियत था। एक लोहे की छड वाला जगला जिस पर टगी रहती थी चिक। उसमे सटी एक बडी सी मेज और आरामकुर्सी। पास मे एक रिवा ल्विग रक जिसम पुस्तकें भरी रहती थी। आचाय ने उसी कुर्सी पर बैठकर साहित्य सृजन किया था, 1945 तक। मगन होता तो कुर्सी को आगे-पीछे हिलाता आखें अर्धमिची कर लेता और सिगरेट का लम्बा सा कश ले, फिल्मी स्टाइल म धुए के छल्ले छोड, हसता रहता। गम्भीर होता, तो सिर

झुकाये या तो लिखना रहता या फिर मानो किसी से कुछ मतलब ही नहीं ऐसे सिगरेट पीता रहता।

लेकिन ऐसा एक भी दिन मेरी जानकारी में नहीं गुजरा जब उसके आस-पास चार-पांच लोग न बैठे रहते हों, हंसी मजाक का अनवरत प्रवाह न चलता रहता हो और उन मजाकों के दौर में वह समान हिस्सा न बढ़ाता रहा हो और, इस सबके बीच, अपनी लेखनी को चलाता न रहा हो वह।

'घरौंदे' इसी वातावरण में लिखा गया, हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा पुरस्कृत लम्बी कविता, 'मेधावी' का निर्माण ऐसे ही हुआ और ठीक इन्हीं ठहाकों के बीच लिखे गये थे 'अजेय खण्डहर' तथा 'विषाद मठ'। 'पंच परमेश्वर' जैसी उत्कृष्ट कहानियां एवं असंख्य गीत और कविताएं यदि बोल सकतीं तो आपको वे उन तमाम सुबहों और दिनों की बड़ी ही दिलचस्प और पुरमजाक घटनाओं की एक लम्बी दास्तान सुनातीं जो उस कमरे में नित्य का कार्यक्रम बन चुकी थी।

आज जब मैं उस बैठक का माहौल अपनी कल्पना द्वारा पुनर्निर्मित करने की चेष्टा कर रहा हूं तो मेरी आंखों के सामने घूम जाते हैं वे तमाम चेहरे जिनमें से प्रत्येक अपने-आप में बहुमुखी प्रतिभा का धनी था, जिसकी प्रत्युत्पन्नमति का लोहा सारा विद्यार्थी वर्ग मानता था और जो अपने अपने क्षेत्र में आज भी सुप्रतिष्ठित बने हुए हैं।

जैसे कि किशन भाई। पूरा नाम श्रीकृष्णचन्द्र खन्ना। पप्पू के घनिष्ठतम मित्र होने का दावा अगर कोई कर सकता था तो किशन भाई। देखने-सुनने में नितान्त निरीह। बातचीत कम। पप्पू के लंगोटिया यार। खत्री गली की सभ्यता का अगाध ज्ञान लिये, किशन भाई किसी की भी व्यक्तिगत समस्या पर पूर्ण सहानुभूति तथा समझदारी से मूक सलाह देते रहते हैं। लिखने पर आए तो अच्छे अच्छे लेखकों को चकाचौंध कर दें, अध्यापन किया तो डी० ए० वी० कालेज के प्रधानाध्यापक बने। आदि-आदि।

किशन भाई की चर्चा चली है तो वह अविस्मरणीय घटना भी लिख ही दूं।

पप्पू के पिता, श्री रंगाचार्य, तिजारी के बुखार को एक

खिलाकर ठीक कर देने के लिए मुहल्ले म काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। मरीज उनके पास आता तो वे एक पान पर कुछ रेखायें खींच कर फुसफुसाते हुए कोई मत्र पढते और उस पान को बुखार चढ़ने स एक घण्टा पहले खा लेने का आदेश देते। कहते हैं कि पान चबा लेने के बाद बुखार आना बन्द हो जाता था।

तो, एक दिन किशन भाई भी मरीज बनकर पिताजी के पास आए। सयोग से पप्पू भी वहीं बठा था। पान स बुखार ठीक हो जाने की बात का कुछ मजाक उड़ाया उसने और दावा किया कि मत्र वत्र कुछ नहीं होता, यह तो मरीज की आस्था का फल है कि बुखार नही चढता।

पप्पू यह भी कह बैठा कि अगर वह खुद पान पर अपना मत्र फूक दे तो भी किशन भाई का बुखार उतर जायगा। पिताजी ने चुनौती स्वीकार कर ली। पप्पू ने भी मैदान नही छोडा। पूरे आडम्बर क साथ पान पर स्वस्तिक बनाया, हल्दी रोली के छीटे मार और ठीक पिताजी के अन्दाज मे कुछ मत्र-सा बुदबुदाया।

किशन भाई पान ले गये। पूरी श्रद्धा स उस खा लिया और—बुखार सचमुच गायब हो गया। दूसरे दिन पप्पू के यहा जुटी हमारी जमात ने उसकी पीठ ठोकते हुए जब उसस मत्र बताने की बहुत जिद की तो काफी हील हुज्जत के बाद, वह बोला कि मत्र के नाम पर उसने फुसफुसाया था—
टिव क्ल टिवन्कल लिटिल स्टार

किशन भाई जैसा ही उसका लगोटिया था सुन्दर सिंह। खन्नी गली के पास ही रहता था। लम्बा, दुबला। गोरा भी हो सकता था अगर कम-जोर स्वास्थ्य ने चमडी पर एक पीली परत न चढा रखी होती। निचला ओठ कुछ-कुछ आगे। उसम वह प्राय चिपकाये रहता था एक सुलगती बीडी। ऊपर के ओठ पर चिपकी रहती थी हिटलर छाप मूछें। पहन रहता था, अधिकतर, अलीगढी तग मोहरी का पाजामा और उस पर झुलायें रखता था एक कमीज।

सुन्दर सिंह आगरा कालज का छात्र था। हमारी टोली मे वही एक मात्र आगरा कालज वाला था। पर कहा टिक पाता था वह अपने कॉलिज मे? पीरियड खाली होत ही वह ठडी सडक नापने लग जाता था। इतने

फेरे लगते थे उसके बाग मुज़फ्फर खा के चौराहे और आगरा कॉलिज के बीच कि यारो ने उसे 'बेयर आफ ड्रमड रोड' कहना शुरू कर दिया था।

उन दिनों हमारी ठडी सडक का सरकारी नाम हुआ करता था 'ड्रमड रोड'। रहे होंगे कोई क्लक्टर-कमिश्नर मि० ड्रमड कभी। आज, आज़ादी के बाद, वह बेचारी सडक भी, देश की अन्य सैकडा प्रमुख सडको की भाति, महात्मा गाधी की स्मृति का समर्पित होकर महात्मा गाधी रोड बन गयी है और अपने सिकुडे सिमटे रूप मे कही जाती है एम० जी० रोड।

बहरहाल इस ठडी सडक पर सुदर सिंह को सुबह, शाम, दोपहर कभी भी चक्कर लगाते मैं अपने स्कूली दिनो से ही देखा करता था। सुनता रहता था कि उसकी अग्रेज़ी बहुत अच्छी है। पास आने पर इस प्रवाद की तस्दीक भी हो गयी। धाराप्रवाह बोलता था कम्बख्त। पर लहजा ठेठ देसी ही हुआ करता था। इस मामले मे उस्ताद लाखन सिंह और राजेद्र सिंह चौहान उससे अधिक नम्बर ले जाते थ। ये दोनो 'किंग्स इगलिश' को 'किंग' की तरह ही बोलते थे। हमारा सुदर सिंह उनसे तनिक भिन्न था। उसक शब्दों के चयन पर, बिना उच्चारण का ख़ौफ खाये, मुग्ध हुआ जा सकता था, मज़ा लिया जा सकता था।

और उसकी मज़ाक पसदी, 'से स ऑफ ह्यूमर', गज़ब था। पप्पू को वह हमेशा 'एम क्यूब' कहा करता था—मीन माइडेड मद्रासी।

जब जब पप्पू काली शेरवानी और लट्ठे का सफेद झक फडफडाता पाजामा पहनकर घर से निकलता तो सुदर सिंह अवश्य ही कह उठता था—"रागैय राघव विद हिज़ फ्लॉटिंग हेयर लेडीज़ बिवेयर, बिवेयर, बिवेयर '

एक बार सुदर सिंह की कक्षा मे अध्यापक ने हरेक छात्र से उसकी राजनीतिक विचारधारा पूछना शुरू किया। किसी ने अपने को राष्ट्रवादी बताया, किसी ने समाजवादी, तो किसी ने साम्यवादी। सुदर सिंह की बारी आयी तो वह बेझिझक बोल उठा था, "सर, मैं अवसरवादी हूँ।"

एक दिन पप्पू और मैं कॉलेज के सामने मैदान मे फुटबाल मैच देख रहे थे। शाम क चार बजे होगे। देखा, सुन्दर सिंह दो केले और तीन सतरे लिए आ खडा हुआ हमारे पास। "अबे, आज यह रईसी ? किसकी जेब

काटी ?" पप्पू ने पूछा। 'पाटनर, चलो तुम्हें ऐश करा लायें," सुंदर सिंह हम प्राय खीचते हुए बोला। काफी उत्तेजित लग रहा था वह।

पता चला कि हज़रत ने उसी दिन सुबह मैडिकल कॉलेज के अस्पताल में दाखिला ले लिया था। बीमार तो वह किसी न किसी रोग से रहा ही करता था, सो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। परन्तु दाखिला लिये बाद, उस वक्त वह कालेज की फील्ड पर क्या करने और कैसे आ धमका इसके उत्तर में सुंदर सिंह ने जो बताया वह केवल वही कह सकता था।

'यार, हॉस्पिटल में बड़ी अच्छी अच्छी खूबसूरत नर्सें हैं। और पाटनर, वहां फ्रूट्स फ्री मिलते हैं। यू डोंट हैव टु पे ए सिंगिल फार्दिंग फॉर सच लूशस बैनानाज एंड ऑरेंजेज़।" जब उस केले और संतरे मुफ्त मिले तो उसे यारों की याद सताने लगी। चार से छ बजे तक 'विजिटर्स टाइम' रहता है न, सो वह अपने पड़ोसी रोगी को पटाकर वहां से भाग निकला कि 'फ्रूट्स' यारों के साथ 'शेयर' कर ले। अब तुरंत उसे वापस भागना है, पर वह अकेला लौट गया तो हम लोग उन 'ईवली लूशस' नर्सों को कैसे देख पायेंगे ?

गरज कि हमें करीब करीब दौड़ते हुए सुंदर सिंह के साथ अस्पताल जाना पड़ा। अपने पलंग पर बैठने के बाद ही उसने केले संतरे छीले। खाते खाते मैंने पूछा कि उसे क्या बीमारी है। सुंदर सिंह ने बड़ी शान से बताया—'ऐंडोमेट्राइटिस'। कुछ देर बाद एंग्लो इंडियन नर्स आयी। सुंदर सिंह के मुंह में थर्मामीटर लगा था। मैंने नर्स से पूछा कि मेरे दोस्त को यह कौन-सी बीमारी लग गयी एंडोमैट्राइटिस ? बस। इतना सुनना था कि नर्स तो लगी खिलखिलाने। हंसते हंसते वह दोहरी हुए जा रही थी। उधर, सुंदर सिंह और हम दोनों के पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा था। हंसी का दौर थमने पर नर्स ने खुलासा किया कि एंडोमेट्राइटिस तो एक स्त्री रोग का नाम है। अब दुहरा होने की हमारी बारी थी। और सुंदर सिंह ? उसका तो चेहरा देखने काबिल था। बेचारे को सुबह किसी नर्स ने मज़ाक में कह दिया था और वह इस भारी भरकम नाम को मैडिल की तरह छाती पर लगाए घूमना चाह रहा था। पर उस दिन गाड़ी नाव पर सवार हो गयी थी। फिर तो जब भी सुन्दर सिंह ज्यादा चूं चपड़ करता, सिर्फ 'एंडो-

मैट्राइटिस' कह देने से ही उसका चेहरा उतर जाता था।

एक और दोस्त था पप्पू का—सोना नाई। पप्पू के रक्त में आभिजात्य घुला था। साफ साफ कहूं—उसमे अनेक सामंती तत्त्व थे। यथासंभव शारीरिक श्रम से बचता रहता था। इसी चक्कर में उसने सायकिल चलाना नहीं सीखा (अबे, मैं काई दूधवाला हूं ?), तैरना नहीं सीखा (मुझे कौन तैराकी के मेले मे जाना है ?) स्टोव जलाने की उसने कभी कोशिश भी नहीं की। (कैरोसीन की बदबू हाथों मे घंटों बनी रहती है) और जहा तक संभव हुआ अपने हाथों शेव नहीं किया। तो, राजकुमार की दाढ़ी बनाने आता था सोना। बूढा, मलगजा, चिपचिपी आंखों वाला सोना अक्सर मुझे दाढ़ी बनाता मिल जाता। कितनी बातें करता रहता था वह। जान-जहान की। और पप्पू बेहद रस लेकर सुनता चलता था। पहले विश्व-युद्ध मे (1914 18) भारतीय फौज में नाई बनकर यूरोप घूम आया था। उसे फ्रास बहुत पसन्द आया था। 'क्या पूछो हो, पप्पू भैया, म्हा पै ऐसी ऐसी मलूक मैंमिया थी कि बस क्या बताऊ।" उन फ्रांसिसी मैमो का वर्णन करते हुए बस उसकी लार टपकना ही बाकी रहता था। उधर, पप्पू भैया मगन होते रहते।

पर उस दिन तो सोना ने हद ही कर दी। बातो की झोक में कह बैठा, "सच्ची कै रिह्या हू साब, कसम ले लो जो झूठ बोलता होऊं तो। आज भी म्हा पै मेरे चार छ लौंडे घूम रए होंगे।" अचानक पप्पू गरज उठा— "चो—प, खबरदार जो और बोला तो।" सोना अभी भी झोंक में था, "ईमान से कै रिह्याऊं पप्पू भैया। चार छै तो कमती सैंकमती बता रिह्याऊं। दो चार ज्यादा ई होमेंगे।"

पप्पू का पारा चरम पर पहुंच गया, 'साले नाई के, फ्रास जैसे खूबसूरत देश को बिगाड के रख आया। मनमोहन, यार सोच जरा, अगर इसकी शक्ल के चार-पाच फ्रासिसी हो गये तो फ्रास की तो रेड मार के रख दी न इस बदमाश ने ?" पप्पू गंदे तो आसानी से बर्दाश्त कर लेता था, मगर कल्पना में भी कहीं सौंदर्य पर आंच आये यह उसे हर्गिज गवारा नहीं था।

सन 1940 की गर्मियां बीतीं। कालेज पुन जुलाई में खुल गया। आगरा कम्यूनिस्ट पार्टी के संगठनकर्ता और मेरे राजनीति के गुरु, कॉम-

रेड महादेव नारायण टंडन, गिरफ्तार किये जाकर राजस्थान मे दवली कैम्प मे भेजे जा चुके थे। उनके साथ डॉ० अब्दुल हफीज़, राम ना शास्त्री आदि भी वही पहुचा दिए गए थे। बच गए थे सिर्फ पदम कुमार जैन, बी० पी० शुक्ला, काशीचरण पाडे। साम्राज्यवादी दमन अपने पूरे शबाब पर था। कम्यूनिस्ट पार्टी का केन्द्र, 'लेनिन भवन' नाम का कमरा बद था और साथियो के नाम पर रह गए थे हम आधा दजन विद्यार्थी। सेन्ट जान्स कॉलिज से अकेला मैं, बलवन्त राजपूत कॉलेज से देशराज मैडिकल कॉलेज से बी० पी० शुक्ला और आगरा कॉलेज से वीरेन्द्र और सत्यनारायण दुबे। काशी चरण पाडे निजी कारणो से पढाई छोड प्राय निष्क्रिय हो गए थे।

तथापि इस सकट काल मे भी आगरा विद्यार्थी सघ पूरी तरह से सक्रिय था। इसी कारण ज़िले मे कम्यूनिस्ट आन्दोलन की चिनगारी बुझ नही पाई थी। हमे ग़ैर कानूनी माम्यवादी साहित्य, विशेषकर 'कम्यूनिस्ट अखबार' की प्रतियां पदमकुमार जैन के माध्यम से बराबर मिलती रहती थी और उसी के आधार पर हम अपनी अधपकी बुद्धि के अनुसार आन्दोलन चलाते रहते थे। हमारे 'स्टडी सर्किल' भी बाकायदा चालू थे।

इसी ममय मे स्थापित हुआ 'आगरा प्रगतिशील लेखक सघ'। प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने इसकी स्थापना की। गुप्ता साहब हिन्दी जगत मे अपनी रेखाचित्र द्वारा प्रसिद्ध हो चुके थे। 'हस' मे प्रकाशित उनके लेख और आलोचनायें यथेष्ट लोकप्रिय सिद्ध हुई। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप आगरा के हास्य-व्यग्य मासिक 'मतवाला' के प्रकाशक, श्री ओमप्रकाश शर्मा के घर पर प्रगतिशील लेखक सघ की बैठकें नियमित रूप से होने लगीं।

इन बैठको मे गुप्ता साहब की मेहरबानी से मुझे भी प्रारम्भ मे ही निमन्त्रित किया जाने लगा। यही मेरा परिचय श्री भारत भूषण अग्रवाल और श्री नेमिचन्द्र जैन से हुआ। भारत भाई बड़े अच्छे कवि थे। कण्ठ भी उनका अपनी विशिष्टता लिए था। हमारे कॉलेज के ही छात्र थे भारत भूषण और नेमि भाई। गुप्ता साहब के कृपा पात्र होने के कारण बड़े उत्साह से प्रगतिशील लेखक सघ की गोष्ठियों मे भाग लेते थे। काफी मुखरित रहता था उनका स्वर।

उन दिनों इन गोष्ठियों मे आगरा के हिन्दी और उर्दू के प्राय सभी

प्रमुख साहित्यिक अपनी रचनाओ का पाठ करना अपना कर्तव्य मानते थे। बाबू गुलाबराय, महेन्द्रजी प्रो० विश्वम्भर 'मानव' मखमूर अकबरावादी, लाम० अहमद साहब—सभी नियमित रूप से आते थे। पप्पू भी इन बैठको मे अपनी रचनाए बराबर सुनाता था। ओमप्रकाश भाई बाग मुजफ्फर खा मे ही रहते थे, सेन्ट जान्स कालेज के पास ही। व भी इसी कॉलेज के छात्र थे। पप्पू के पारिवारिक मित्र थे।

प्रगतिशील लेखक सघ म आने वाले सभी लेखक कम्यूनिस्ट पार्टी के समर्थक नही थे। कुछ तो बाकायदा साम्यवाद विरोधी थे। प्रो० विश्वम्भर 'मानव' समस्त प्रगतिशील साहित्य के मुखर और कटु आलोचक मे अग्रणी थे। मखमूर साहब भी साहित्य की 'शाश्वत' परम्पराओ की रक्षा के नाम पर प्रत्येक प्रगतिशील रचना पर मुह सिकोड लेते थे। एक दिन जब गोष्ठी मे किसी ने जूते बनाने वाले चमार को नायक बनाकर कहानी सुनाई तो मखमूर साहब का धैर्य छूट गया। 'लाहौल बिला कूवत। आपको क्या चमार ही मिला था कहानी गढ़ने को? क्या अगर कहानी ही लिखनी है तो चाद पर लिखो, ताजमहल पर लिखो। यह क्या अधेर कर रहे हो?" वे भडक उठे थे।

इन गोष्ठियो मे हर नये लेखक को बडा प्रोत्साहन मिलता था। मेरा एक सहपाठी था, वहाबुद्दीन। दो-तीन गोष्ठियो म आया और उस माहौल से प्रेरणा प्राप्त कर उसने भी एक बडी खूबसूरत कहानी लिखी, 'लोहे-शाह'। गुप्ता साहब ने तुर त उसे 'हस' म छापे जाने की व्यवस्था कर दी थी। वहाब अपने साहित्य सजन का पूरा श्रेय प्रगतिशील लेखक सघ को दिया करता था।

मुझे याद है कि इ हीं बठको मे पप्पू न भी एक लम्बी कहानी[1] पढी थी। शायद दो या तीन गोष्ठियो मे समाप्त हुई थी वह। एक चार मजिल की इमारत के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण था उसमे। बहुत चौंका था मैं इस कहानी को सुनकर, बहुत मुग्ध हुआ था। बिना मार्क्सवादी मुहावरे का प्रयोग किये, उसने इस कहानी मे साम्यवाद के वर्ग-

1 'नरक'

युद्ध के मौलिक सिद्धान्त को किस रोचक ढंग से स्पष्ट उजागर किया था।

किन्तु भारत भूषण ने इस कहानी की जिस तरह आलोचना की, मजाक बनाया उससे मुझे बहुत धक्का लगा था। मैं तब तक 'साहित्य की राजनीति' से कतई अनजान था। नया कम्यूनिस्ट हुआ था और उम्र भी तब कच्ची ही थी। इन तथाकथित बौद्धिक दाव-पेंचो से नितान्त अपरिचित। अतएव मुझे खासी झुंझलाहट हुई थी भारत भाई के इस रवैये पर। यह झुंझलाहट और भी बढ़ गई थी जब मैंने गुप्ता साहब को भी 'नरो वा कुंजरो वा' जैसी राय प्रकट करते देखा।

बहुत बाद में जाकर समझ सका था कि 'सच्चा' कम्यूनिस्ट बुद्धिजीवी उन सबको अपना विरोधी मान बैठने की ग़लती प्राय कर लेता है जो उसकी पार्टी का सदस्य न हो। सकीर्ण मनोवृत्ति के इस विस्फोट का कितना बडा मूल्य पार्टी को चुकाना पडा था यह तो रणदिवे युग की समाप्ति के बाद ही समझ पाई थी पार्टी खुद भी।

इसके बावजूद, प्रगतिशील लेखक संघ की गोष्ठिया अबाध चलती रही। मेरा पप्पू की बैठक पर जाना क्रमश बढता गया। अम्मा ने भी अब मुझ पर अपना अगाध स्नेह ढालना प्रारम्भ कर दिया था। मैं उस मित्र मण्डली का बाकायदा सदस्य बन चुका था।

इस दौरान मैं जो कम्यूनिस्ट पार्टी मे टिका रह सका उसका सारा श्रेय प्रोफेसर नीहार रजन सरकार और प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त को जाता है। सरकार साहब को खास तौर पर। व बगाली ईसाई थे। कलकत्ता के निकट श्रीरामपुर के निवासी। पिता पादरी थे। एक बहिन और एक भाई और थे। विद्यार्थी थे तभी कम्यूनिस्ट बन गये। नतीजे मे दो वर्ष रेगुलेशन 3 मे नजरबन्द रहना पडा उनको। एम० ए० करने के बाद, ईसाई होने के नाते सेन्ट जान्स कालेज मे अर्थशास्त्र के लेक्चरार नियुक्त हो गये। 30 32 की आयु। हसमुख, मिलनसार।

जब उन्हे पता चल गया कि मैं भी कम्यूनिस्ट हू वे अक्सर मुझे और वहाबुद्दीन को विशप फ्रेंच हॉस्टल मे शाम की चाय पर निमन्त्रित करने लगे। मार्क्सवादी पुस्तको का खासा भण्डार था उनके पास। मुझे तो मानो स्वर्ग ही मिल गया। जब भी मेरा पीरियड खाली होता, मैं उनके

कमरे मे जा बैठता । उन्हे पढाने जाना होता तो कमरे की चाबी मुझे दे जाते । कई बार मरे घर भी पहुच जात । उस जमाने म किसी कॉलेज के प्रोफेसर का अपने छात्र के घर जा पहुचना प्राय अकल्पनीय ही था। परन्तु सरकार साहब की तो बात ही निराली थी । रूरल डेवपलमेंट सोसायटी' तो उन्ही की देख रख म चलती थी । मैं भी उनका अधिक से अधिक सान्निध्य प्राप्त करने के लोभ वश इस सोसायटी मे बडी दिलचस्पी लेने लगा था। पप्पू इस सोसायटी के आस पास नही जा पाता था। एक तो उसे सायकिल चलानी नही आती थी, और दूसरे गाव की धूल और गन्दगी उसके लिए कतई नाकाबिले बर्दाश्त थी।

प्रत्येक दिसम्बर मे हमारी इस सोसायटी का वार्षिक कैम्प लगा करता था। हम अपने गाव म जा पहुचे। प्राय 15 लोग थे। इस वष प्रो० गुप्ता भारत भूषण और नेमिचन्द्र जैन भी इस कम्प म शरीक थे। तम्बुओ मे रहना, पुआल पर बिस्तर बिछा कर सोना। सुबह उठते ही गाव की सफाई के लिए झाडू लेकर निकल जाते थे हम लोग। एक टोली नालियो के पास गड्ढे खोद कर उनमे ककड पत्थर भर देती। इन्हें हम 'सोक पिट' कहते थे। एक और टोली दवाए बाटने और प्राथमिक चिकित्सा म जुट जाती।

शुरू शुरू में गाव वाले हमसे बहुत सशकित रहत थे। वे हमे फौजी भर्ती करने वाले सरकारी आदमी समझते थे। किस्मत से उस गाव म एक पढे लिखे सज्जन हमे उपलब्ध हो गये। श्री उत्तम चद। वे आस पास के इलाके के एक मात्र ग्रेजुएट थे जो वहीं रह कर खेती करते थे। हमने उनको अपने उद्देश्य की जानकारी दी तो वे भी हमारे साथ पूरे उत्साह से जुट गये। उनको साथ ले लेने के बाद तो हमारा काम बहुत आसान हो गया। गाव के अन्य नौजवान भी आकर सहायता करन लगे।

कैम्प मे आये दूसरा दिन था। सुबह सबेरे अपने तम्बू के पास ही एक चबूतरे पर बैठा मैं नीम की दातौन से दांत घिस रहा था। पीछे मेरी चुटिया साथ साथ फुदक रही थी। गुप्ता साहब ने उसे देखा तो चुपचाप इशारे से, वहाबुद्दीन से कैंची मगवाई और मुझे पता भी न चला, सपाक से चुटिया जड से काट दी। अब आस-पास जो हंसी का रेला उठा तो

मेरा ध्यान उधर गया। देखा सरकार साहब गाठ बधी चुटिया को चाबी के गुच्छे की तरह उगली पर नचा रहे हैं।

उस समय तो मैं भी जी खोल कर हसा था। पर घर लौटने के बाद जब कैफियत देनी पडी तो बडी लानत पडी थी मुझ पर चारो तरफ से। "हम तो पहले ही जानते थे कि इस तरह के कैम्प लगाये जाते हैं लोगो को ईसाई बनाने के लिए। ब्राह्मण के बेटे की दो ही तो पहचान होती हैं—शिखा और सूत्र। आज शिखा गवाई है अब देख लेना, बहुत जल्दी ही जनेऊ भी गायब हो जायगा। फिर जीना, बेटा, भगी बनकर"—सभी बडे बूढो ने सुस्पष्ट भविष्यवाणी कर दी थी। तथापि जनेऊ से इतनी आसानी से मुक्ति कहा मिल पायी थी!

कैम्प से लौटने के बाद जब हमारी टोली को मेरे शिखा-कर्तन का किस्सा वहाब ने सविस्तार सुनाया तो पप्पू ने बडी पीठ ठोकी थी। 'अब तू आदमी लगने लगेगा। खबरदार अगर अपनी चुटिया फिर से बढ़ाई तो।'

सन 1941 मे मैंने इटरमीडियेट की परीक्षा दी। उ ही दिनो गाधी जी ने 'व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू कर दिया था। 'स्टेटसमैन' तब विशुद्ध अग्रेजी साम्राज्यवाद का मुखपत्र था। वह इस सत्याग्रह के समाचार 'क्रैंक्स कार्नर' के शीर्षक से छापा करता था। उसकी निगाह मे यह विशुद्ध पागलपन था।

मेरे बडे मामाजी, श्री कुजीलाल नागर, ने भी इसमे हिस्सा लिया। बाकायदा कलेक्टर को सूचना दी कि अमुक माच को वे सिकन्दरा जाकर युद्ध-विरोधी नारे लगायेंगे। घर से चलने से पहले उन्हे माला पहनायी गयी, आरती उतारी गयी और फिर सायकल पर बैठ वे चले सिकन्दरा—आगरा से करीब पाच मील दूर, जहा सम्राट् अकबर का मकबरा है। दूसरे दिन मेरी इतिहास की परीक्षा थी। किन्तु जब मेरे अभिभावक जेल जाने वाले हों तो मैं कैसे घर पर बैठा रह जाता?

हम दोनो सिकन्दरा पहुचे। निर्धारित समय (4 बजे) पर मामाजी ने युद्ध विरोधी नारे लगाये। पर यह क्या? वहा दूर दूर तक किसी पुलिस वाले का नाम निशान तक नहीं था। अब वे गिरफ्तार कैसे हों?

और गिरफ्तार न हो तो, गाधीजी के आदर्शानुसार उन्हे चलते चले जाना था दिल्ली की ओर, जब तक उन्हें पकड न लिया जाता।

बडी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। दिल्ली की ओर चल पडने मे कोई तकलीफ न होती अगर मामाजी अपने साथ एकाध कम्बल या पुलओवर ले आये होते। रात मे सर्दी रहती है। अतएव उन्होने मुझे वापस घर जाकर कम्बल आदि ले आने को कहा।

मैंने सोचा कि क्यो व्यर्थ म मामाजी का कष्ट दिया जाय दिल्ली की ओर कूच करने का। अतएव मैं घर की बजाय सीधा चला गया आगरा कोतवाली। कोतवाल, श्री फिलिप्स, मुझसे परिचित थे। उन्हे जब पूरी स्थिति स अवगत कराया तो फाइलें टटोलने के बाद पता चला कि उन्हें उस दिन के सत्याग्रह की कोई जानकारी ही नही थी। कलेक्टर के यहा से कोई सूचना नहीं दी गई थी।

बहरहाल, कोतवाल साहब ने हरीपर्वत के थानेदार को आदेश दिया कि वह मामाजी को गिरफ्तार कर ले। यह थानेदार, शेरखा, कक्षा—3 से 5 तक गवर्नमेन्ट हाई स्कूल मे मेरे साथ पढा था। वर्षों बाद मिलने पर भी मुझे तुरन्त पहचान गया। बडी इज्जत स, मामाजी को तागे पर बठा कर, थाने लाया। मिठाई-नमकीन खिलायी। जिस कोठरी मे उन्हे सारी रात रखना था, उस धुला पुछाकर साफ करवाया।

मै घर चला ताकि मामाजी का बिस्तर लाकर उन्हें दे दू। घर पर सभी इतनी दर हो जान स चिन्तित हो रहे थे। उन्हें विस्तार से समाचार दिए और बिस्तर को सायकिल पर लाद कर पुन थाने की ओर चला। मुश्किल से सन्ट जॉन्स कॉलेज तक पहुचा था कि देखा मामाजी पैदल-पदल चल आ रहे है। पता चला कि सिकन्दरा पर कोई भी आदमी गवाही दने को तैयार नही हुआ था कि मामाजी ने कोई नारे लगाए थे। वहा के लोगो ने सोचा होगा कि कौन कोर्ट कचहरी के चक्कर मे पडे। 'एक नन्ना सौ दुख हरे' वाली मसल हो गई। और मामाजी, अदम गवाही म साफ छाड दिए गए।

दूसरे दिन हम सब इस घटना को दुहरा दुहरा कर हस हस कर दुहरे हुए थे। पप्पू ने, किन्तु, इसको अपने एक उपन्यास म (अगर भूल नही

करता तो कदाचित विषाद मठ' म) ज्यो का त्यो इस्तमाल किया था।

उस वष मैं इटरमीडियेट की परीक्षा म फस्ट डीवीज़न मे पास हो गया। सारे कालज मे बडी खुशी मनाई गई क्योकि उस जमाने म आट स म फस्ट डिवीजन बहुत ही यदा कदा आता था। प्रि सीपल सले ने कालेज खुलने पर कॉलेज हाल मे सामूहिक प्राथना समाप्त होने पर, उच्छवसित प्रशसा की थी मरी और व्यक्तिश बधाई भी दी थी।

पर तु इसी 1941 मे 22 जून को बबर हिटलर की फासिस्ट फौजो ने सोवियत यूनियन पर हमला बोल दिया था। सोवियत देश जिसके लिए हम बडे जोश भरे स्वरो म गाया करते थे—

सोवियत देश किसका है ? किसका है ?

मजदूरो और किसानो का,

जनता हित जनता सारी का।

उसी लाल क्रा ति की मशाल को बुझाने के गर्हित उद्देश्य स सारे यूरोप को पाव तले रौंदने के बाद अब उसने अपने काले हाथ बढा दिए थे लेनिन द्वारा स्थापित और स्तालिन द्वारा पोषित सोवियत भूमि की ओर।

एक बार तो हम सब भौंचक्के रह गये थे। तमाम यूरोपीय देशो मे उसकी नाजी फौजें इस आसानी स घुसती चली गई थी जैसे मक्खन म छुरी। तो क्या हिटलर की दम्भपूण उक्ति आखिर सच सिद्ध हो रहेगी कि दस हफ्ते बीतते-न-बीतते मास्को पर जमन सेनाओ का अधिकार हो जायगा ?

पर तु ज्यो ज्यो समय बीतता गया, सारा ससार आश्चयचकित होकर लाल फौज के रणकौशल और अप्रतिम वीरता का कायल होने लगा। शिव मगल सिह सुमन ने ही सव प्रथम कहा था—'दस हफ्त दस मास हो गए मास्को अब भी दूर है।' हम लोग भी कुछ कुछ आश्वस्त होने लगे थ। तथापि यह भी सच है कि हमारे देश मे उन लोगो की भी कमी नही थी जो हवा के रुख के साथ बहकर 'हिटलर महान' और 'इटली का त्राता मुसोलिनी' जैस ग्र थ धडाधड लिखकर छपवाने लग गये थे। 'जसी बहे बयार '

इसी वष, कॉलेज खुलने पर पता चला कि प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त और

प्रो० सरकार दोना मेन्ट जॉन्स कॉलेज म अन्यत्र चले गये हैं। गुप्ता साहब इलाहाबाद विश्वविद्यालय क अंग्रेजी विभाग मे, और सरकार साहब कलकत्ता के स्कॉटिश चर्च कालेज म। बडा दु ख हुआ था, परन्तु चारा भी क्या था ?

पप्पू का 'घरौंदे' समाप्त हो चुका था। कविताओ और कहानियो की तो न उसने कभी गिनती रखी थी, न हमने। हा एक लम्बी कविता उसने लिखना शुरु किया था उन दिनो—'मेघावी'। अनेक विषयो का समावेश था इस कविता म। इसम नक्षत्रो क समवेत नृत्य वाली उसकी पक्तिया ने बडी गहरी छाप छोडी थी मन पर। नित्य लिखता और नित्य सुनाता। उसका कण्ठ अपूव था। बेहद प्यारा गाता था। मुग्ध होकर हम सुनते रहत और समाप्त होने पर शुरू हो जाती चुहलबाजिया।

इ ही दिनो की बात है। मेरी एक सहपाठिनी थी। गोरी सी, नाटी सी। आखें बडी बडी। अलग स देखो तो कोई विशेष प्रभाव नही पडता था। बस ठीक ठीक ही थी। पैदल पैदल चलकर कॉलेज आती। पप्पू के घर के सामने से नित्य प्रति गुजरना पडता था उस। घर दाहिनी आर के फुटपाथ से लगा था।

पप्पू ने जगले पर पडी चिक की एक तीली—उसी की खातिर—तोड ली थी। अब व उस झीनी सी झिर्री स एक दूसरे को देखने लग गये। बस, केवल इतना भर, अधिक कुछ नही। उसके आने का समय होता कि पप्पू लिखना बद कर, आरामकुर्सी पर पीछे की ओर झूलने लगता। सिगरेट सुलगा लेता और इधर उधर की बातें शुरू कर देता। हम समझ जाते कि वक्त हो गया है देवीजी के प्रादुर्भाव का। वह फुटपाथ बदलकर इस ओर आ जाती, आखें गडा कर पप्पू को दखती और चेहरे पर जरा-सी भी शिकन लाये बिना कॉलेज की ओर चली जाती।

"इसे देखकर साले पप्पू की बैठे बैठे चाल बदल जाती है।" बडी सटीक उक्ति थी उस्ताद लाखन सिंह की। यो, पप्पू को छेडने की खातिर एक चालू किस्म की तुकबदी मैंने भी इस "भसा से दीदो वाली" की शान मे गढ ली थी। कुछ पक्तिया आज भी याद रह गई हैं—

नित्य सबेरे पौने दस स
दखा करता बाट तुम्हारी
जब तुम आती मुझे घूरती
मैं हा जाता पानी पानी

वगैरा-वग़ैरा। सुन्दर सिंह ने उस बाकायदा 'भाभी' कहना प्रारम्भ कर दिया था।

पप्पू को रोमास के आस पास जात दखन का यह पहला मौका था। या, इस क्षेत्र मे अब तक, वह काफी झेंपू किस्म का सिद्ध हुआ था। मुझ व्यक्तिगत जानकारी थी कि मुहल्ले के अपने एक मित्र के घर के पास स एक रात वह प्राय नौ बज निकला था। उस मित्र की अविवाहिता बहिन ने उसे घर क अदर निमत्रित किया। पप्पू सहज भाव स चला गया। वहा जान पर उस पता चला कि घर मे उस बहिन क अलावा और कोई नही है, सिनेमा देखने गए हैं सब लोग। पाच सात मिनिट इधर उधर की बात करने के बाद उसने स्पष्ट प्रस्ताव रख दिया। और पप्पू की तो फूक ही खिसक गई। हडबडा कर भाग निकला था उस रात। फिर दसर दिन जब अतरग मित्रो के बीच उसने यह किस्सा सुनाया तो लाखन ने ही कहा था, "सान, भरी थाली पर लात मार आया है। अब, बेटा, दान-दाने को तरसगा।"

अतएव, पप्पू के प्रति इस मौन और एकागी प्रेम को देखकर हम लाग केवल यदा कदा उसकी टाग खीच कर ही रह जाते थे। किस्सा कितना गाढा हुआ या उसका अन्दाज ता तीन वर्ष बाद पता चला था। उसकी चर्चा बाद मे।

इन दिनों तो हमने उस या ता कहानिया कविताए लिखत देखा था या यारो के साथ मौज मस्ती करत। हा, अब वह मार्क्सवादी साहित्य भी बाक़ायदा, गम्भीरतापूर्वक, पढन लग गया था। बहुधा मुझस इस सबध मे बात भी करता था। अपने अधकचरे ज्ञान का बडे उत्साह के साथ मैं उसके गल उतारता रहता था।

बात है दीवाली के बाद देवोत्थान एकादशी की। उस दिन सुबह-सुबह मैं उसके घर पहुचा। बात-बात म देवोत्थान एकादशी की चर्चा

निकल आई। मैंने मजाक मे कह दिया कि अगर आज सचमुच देवता भोग कर इस धराधाम पर नजर डालें तो बचारे शोषित मजदूर किसानों की टोलिया और गगनचुम्बी लाल झण्डे क दल बादल देखकर, घबरा कर वापस स्वग म जा छिपेंगे। पप्पू ने मजाक को और भी मजा लेकर, आग बढाया। इस बीच अम्मा चाय लेकर आ गइ। हमे हसते देखकर कारण पूछा और हमन बडा रस लेकर अपनी कल्पना सविस्तार उन्हे भी सुनायी। नीम झिडकी भर शब्दो मे, 'अरे बेटा, देवी-देवताओ का मजाक नही उडाते,' कहकर अम्मा वापस चली गईं।

शाम को पुन पहुचा तो पप्पू 'देवोत्थान' शीषक कहानी लिख चुका था। पढकर सुनाया तो मुझे गव सा अनुभव हुआ कि इसकी पृष्ठभूमि म मैं भी था। यह कहानी हमारे कॉलेज की मैंगजीन मे छपी थी। भविष्य म उसने इसे अपने किसी 'देवदासी' सग्रह मे सम्मिलित किया था।

इसी वष मुझे यह भी पता चला कि पप्पू पडित बालेश्वर नाथ शास्त्री जी से बाकायदा सस्कृत पढ रहा है। सप्ताह मे एक या दो दिन आते थे पडित जी और पढाते थे दण्डी, भारवि, श्रीहष की रचनाए। मैंने केवल दर्जा सात और आठ म सस्कृत पढी थी। अब जो पप्पू ने दण्डी के तीन-चार पक्तियो वाले समास प्रधान शब्द (जी हा, वाक्य नही, एक शब्द) दिखाए तो मैं बहुत ही गहरे प्रभावित हुआ था दण्डी से भी और उसकी रचनाओ को पढकर समझ लेने वाले पप्पू से भी। पप्पू का यह सस्कृत ज्ञान उसके लिए आग चलकर बेहद लाभदायक सिद्ध हुआ जब उसने कालिदास आदि के ग्रथो का हिदी पद्य म अनुवाद कर डाला था।

पप्पू का एक और शौक था—चित्रकारी। जब तब कागज और रग लेकर बठ जाता और आकने लग जाता बडे सुदर-सुदर चित्र। अधिकतर वाटर कलर मे। लम्बूतरे चेहरो वाले पुरुष और मगनयनी स्त्रिया। बहुत कुछ अजता एलोरा के चित्रो जसी आकृतिया हुआ करती थी। एक बार, धुन चढ जाने पर, उसन अपनी बैठक की चारो दीवारो पर प्राय तीन फीट चौड कागजो पर चित्र बना कर जड दिए थे। बहुत सुदर हो गया था बठक का परिवश।

एक गुजराती कहावत है—'जेवा रहिये जेन साथ, तवा थइय छटठे

मास'। सारि का प्रभाव सदा दुर्निवार सिद्ध होता है। हम दोनों एक छुट्टी के दिन संध्या को कॉलेज के सामने की फील्ड पर घूम रहे थे। चार-साढ़े चार का समय था। हल्की हल्की बूंदा-बांदी होने लगी। बारिश से बचने के लिए हम कॉलिज लायब्रेरी के एंट्री रूम वाले बरामदे में आ बैठे। बौछार तेज हुई तो पप्पू ने सिगरेट सुलगा ली। हम बातें करते रहे कि हवा सर्द हो गई। मुझे ठंड लगी तो पप्पू ने एक सिगरेट मेरी ओर बढ़ा दी "ले, पी ले सर्दी में बच जायगा।'

उस दिन तक मैंने कभी पप्पू के सामने सिगरेट नहीं पी थी। वस भी, कुल मिलाकर शायद पन्द्रह बीस सिगरेटें पी होंगी तब तक—नितान्त बाल मित्रों के साथ। उस दिन जब पप्पू ने सिगरेट बढ़ाई तो एक बार तो मैंने मना कर दिया पर जैसे ही उसने दुबारा कहा, "अबे पी भी ले,' मैंने सिगरेट जला ही ली। झिझक खुलने भर की देर थी, फिर तो मैं भी उसके 'सिगरेट क्लब' का बकायदा सदस्य हो गया। एक दो सप्ताह बीते कि मेरी जेब में भी पासिंग शो और 'डिलक्स टेनर' के पैकेट आ बिराजे। पप्पू की दी सिगरेटें कब तक पीता रहूं, मुझे भी तो उसे ऑफर करना चाहिए—यह विचार रहता था मेरे दिमाग में। इस प्रकार मुझे सिगरेट का लत लगाने का पूरा श्रेय जाता है हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड लेखक, कवि, उपन्यासकार आदि आदि श्री रांगेय राघव को।

मैंने थर्ड ईयर (बी० ए० प्रीवियस) पास किया तब तक कम्यूनिस्ट पार्टी में द्वितीय महायुद्ध के चरित्र को लेकर गहन मंथन, बहस और विचार विमर्श प्रारम्भ हो गया था। पार्टी के अधिकांश नेता जेल में थे। वहीं इस विचार विमर्श के बाद अधिकांश के मतानुसार, सोवियत यूनियन के युद्ध में घसीट लिए जाने के बाद अब वह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध नहीं रह गया था। अब वह जनयुद्ध (पीपुल्स वार) हो गया था।

पार्टी गैर कानूनी थी। हम लोगों के पास इन समस्त बहस मुबाहिसों की विस्तृत रिपोर्ट साइक्लोस्टाइल किए गए कागजों में 'जेल डाक्यूमेंट्स' के नाम से आती रहती थीं। उन्हें पढ़कर, पहले तो मुझे लगा था कि यह हमारे नेताओं की जेल में बाहर आने की चाल मात्र है। भला सोवियत यूनियन पर आक्रमण होने से, अंग्रेजी साम्राज्यवादियों में क्या अन्तर आने

वाला है और क्यों आने वाला है उनके दृष्टिकोण में कोई अन्तर ? यह तो बक़ौल बिहारी—

> कहलाने एकत बसत
> अहि, मयूर मग, बाघ।
> जगत तपोवन सो कियो
> दीरघ दाघ निदाघ।'

वाली मसल है कि आज चर्चिल और स्तालिन दोनों को एक ही सफ म खड़े हो जाना पड़ा है।

किन्तु 1941 के दिसम्बर म पटना मे होने वाले अखिल भारतीय स्टूडेंटस फ़ैडरेशन के अधिवेशन ने जब इस युद्ध को 'जनयुद्ध' करार दे दिया, तो मुझे लगा था कि मामला संगीन हो गया है। बहरहाल, अपने अन्य विद्यार्थी कम्यूनिस्ट साथियो की तरह मैं भी इस 'जनयुद्ध' के सिद्धा त को गले नही उतार पाया था।

सौभाग्यवश, क्रिसमस की छुट्टियाँ स कुछ ही पहले, आगरा कालेज में, तत्कालीन प्रिंसीपल, मिस्टर श्राल के तानाशाही रवैये के खिलाफ, हड़ताल हो गई थी। उन दिनो हमारे विद्यार्थी सघ के अखिल भारतीय नेताओ मे कॉमरेड यज्ञदत्त शर्मा भी थे। वे दिल्ली म रहते थे और आगरा मे उनकी रिश्तेदारी थी। अतएव वे प्राय आगरा आते रहते थ। क्रिसमस की छुट्टियो मे ही हमने उनसे सम्पक किया और जब जनवरी 1942 में कॉलेज खुलने का वक्त आया तो हमने उन्ह आगरा कॉलिज की हड़ताल के सिलसिले म विद्यार्थियो की आम सभा मे भाषण देने के लिए बुलवाया।

कॉमरेड यज्ञदत्त शर्मा का आगरा आना हमारे लिए वरदान सिद्ध हुआ। हमने उनसे लगातार तीन दिन, करीब 7 8 घण्टे रोज, खुलकर बहस की। मार्क्सवाद की सभी जानी-अधजानी उक्तियो और सूक्तियो का जमकर प्रयोग किया और फिर तीसरे दिन, कॉमरेड यज्ञदत्त के तर्कों स निरुत्तर हो, हथियार डाल दिये। अब हमारे लिए भी यह युद्ध मनसा, वाचा, कमणा जनयुद्ध हो गया था।

पप्पू को जो यह बात मानने म अधिक समय नही लगा, इसे मैं अपनी कामयाबी मानता हू। और जब पप्पू ने इसे जनयुद्ध करार दे दिया तो वह

अपनी कविता मे भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने लगा। उसने एक कविता लिखी थी—

टेम्स हो या हो मागरमीसीपी
वोल्गा हो या गगा हो,
सबकी एक लडाई है
दुनिया की आजादी की।

सिंह द्वार पर बर्बर नाज़ी
आह विकल तू क्यो अभिभूत ?
जग रे हिंदुस्तानी जाग
आधी वह बरबादी की।

कौमो जग म चल बढ चल
कातिल का दम आज कुचल,
दुनिया की जनता है साथ
राह यही आजादी की।

भला इससे अधिक सहज, सरल और सरस और कोई व्याख्या हो सकती है 'जनयुद्ध' की ?

सन 1942 की ही गर्मियो की छुट्टियो की बात है। मैं प्रति वष इन छुट्टियो म अपने पिताजी के पास बूदी चला जाता था। बूदी राजस्थान म एक छोटी सी देशी रियासत थी। इतिहास प्रसिद्ध हाडा वश का राज्य था। मेरे दादा वही जा बसे थे। वष म 2-3 सप्ताह के लिए मुझे वहा जाना पडता था।

बूदी मे महिला अस्पताल की मुख्य चिकित्सक थी पप्पू की मौसी—डा० श्रीरगम्मा। इस वष उन्होंने पप्पू को बूदी आने का निमत्रण दिया। पप्पू वहा पहुचा। मुझे इसने अपन आगमन की कोई सूचना नही दी थी। न कभी इस बात का ही जिक्र किया था उसने कि बूदी म उसकी मौसी रहती हैं। एक दिन सुबह जब मैं अपन तिबारे मे बठा सुबह की चाय पी रहा था तो आवाज सुनाई दी, 'मनमोहन'। पप्पू को आंगन म खडा देख कुछ क्षण तो मैं हतवाक् रह गया और फिर 'अबे साले, तू ?' कहता-कहता सीढ़िया फलांगता नीचे उतरा। पप्पू और मैं बाहो म गुथे खडे थे। आखो

में शरारत की चमक और मुह पर दुष्टता भरी मुस्कान बिखरी पडी जा रही थी कि देख बेटा, कैसा चरका दिया है तुने ? तूने तो कभी ख्वाब मे भी नही सोचा होगा कि मैं यहा भी आ धमकूगा।

पप्पू मौसीजी के तागे पर बैठ कर आया था। छोटी सी रियासत म तागे ही मिलते थे अफसरो को अपने व्यवहार के लिए। पर उस जमाने म इन तागो का जो रौब था वह आज कारो का कदापि नही है। और पप्पू बडी देर तक इस बात का रौब, रह रहकर, मुझ पर डालने की चेष्टा करता रहा था कि वह 'मौसीजी के तागे' पर आया है। ऐसा कोई भी मौका वह कदापि नही चूकता था जब वह अपनी शान बघार सके। उसक अहम् की स तुष्टि वह इन छोटी-छोटी बातो स कर लिया करता था।

तो जब वह बार बार उस तागे का जिक्र करने लगा तो मुझसे न रहा गया। "अबे ओ तागे वाले, पल्ली पार चलेगा ?" बस इस एक वाक्य ने ही उसे तागे से उठा कर जमीन पर ला खडा किया। फिर तो हम दोनो तीन चार दिन तक घण्टो साथ बैठ कर वापस बूदी मे आगरा ले आए। उसका बूदी आगमन मेर लिए तो खैर अविस्मरणीय बन ही गया, मर अनेक सग सम्ब धी जिनसे मैंने उसका परिचय कराया था, आज तक वे उस 'बेहद खूबसूरत, शिष्ट और तेजस्वी मित्र की चर्चा कर लिया करत हैं।

गर्मी की छुट्टिया बीती और मैं वापस आगरा लौट आया। देश का राजनीतिक वातावरण बेहद गम हो उठा था। गाधीजी की लेखनी 'हरिजन' मे हर हफ्ते आग उगल रही थी। अ तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लग रहा था कि अब निर्णायक क्षण आ पहुचा है। नाजी फौजें स्तालिनग्राद की ओर बढ रही थीं। जापान ने दक्षिण पूव एशिया मे तहलका मचा रखा था। सिंगापुर इ डोनेशिया से बढ़कर जापानी फौजें बर्मा तक आ गई थी। सुभाष-च द्र बोस ने आजाद हि द फौज बना ली थी। बर्मा के बाद भारत का ही नम्बर आने वाला था। कलकत्ता और पूर्वी तट पर लाखो दिल धडकने लग गए थे। जापानियो का राज हो गया तो ?

हमार देश म एसे लोगो की कतई कोई कमी नही थी जो अग्रेजो की हार की अ तरतम स कामना करत थे भले उसक बाद हमारे देश पर जापानियो का ही राज क्यो न हो जाय। बाबा तुलसीदास न उनके लिए

एक चौपाई सकड़ा साल पहले ही अता कर छोडी थी—कोऊ नृप होउ हमे का हानी, चेरी छाडि न होउब रानी—वाली । 'दुश्मन का दुश्मन हमारा दोस्त है' के सूत्रानुसार जापान भारत का मित्र राष्ट्र था उनकी निगाह मे, और दुश्मन का दोस्त, सोवियत यूनियन, उतना ही गर्हित शत्रु जितना अंग्रेजी साम्राज्यवाद ।

देखते देखते अगस्त आ गया और आने के साथ साथ अपना रग दिखाने लगा। गाधीजी न नारा दिया—अंग्रेजो, भारत छोडो। सारा देश सास रोके प्रतीक्षा करने लगा 9 अगस्त से बम्बई म होने वाले ए० आइ० सी० सी० के अधिवेशन की। लग रहा था कि जरूर कुछ होगा इस बार जो पहले सभी आ दोलना से भिन्न होगा। वही हुआ भी। गाधीजी ने कह दिया— करो या मरो और इसके पहल कि काग्रेस देश के सम्मुख कोई स्पष्ट रूपरेखा रख पाती कुछ करन की, कुछ करते करते मरने की, उसी रात सारे नेताओ को गिरफ्तार कर अज्ञात स्थाना पर ले जाया गया। काग्रेस गैर कानूनी करार दे दी गई।

उधर कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतागण जेलो स छोड दिए गए थे। देवली कम्प ब द कर दिया गया था। का० महादेव नारायण टडन, अब्दुल हफीज और रम ना शास्त्री वापस आगरा लौट आए थे। उनका नेतत्व हम फिर स प्राप्त हो चुका था।

अत 9 अगस्त की शाम को जैस ही हम लोगो ने रेडियो पर य समाचार सुने, हम स्वत स्फूर्त जा जुटे सु दर होटल की छत पर जहा कम्यूनिस्ट पार्टी और अ य सस्थाओ के दफ्तर थे। अभी तक कम्यूनिस्ट आन्दोलन को आगरा जिले म हम मुट्ठी भर विद्यार्थी ही चला रह थे, अतएव उस शाम छत पर हमारी ही सख्या अधिक थी। अधिक बहस की तो गुजायश थी नही। तुर त फैसला ले लिया गया कि नेताओ की गिरफ्तारी के प्रतिवाद म 10 अगस्त को सभी स्कूल कालेजा म हडताल की जायगी।

फैसला लेने के बाद हम सब चल पडे अपने अपन कालेज व हास्टलो की ओर ताकि हॉस्टल वासियो को इसके लिए प्रस्तुत किया जा सके। आज इस बात की कल्पना भी शायद मुश्किल से की जा सकेगी कि तब

किसी कॉलेज में, विशेष कर सेंट जॉन्स कॉलेज जैसे मिशनरी कॉलेज में, एक दिन की हड़ताल करवाने की चेष्टा कितना कठिन काम था।

हमारे कॉलेज में ईसाई और मुसलमान छात्रों की संख्या यथेष्ट थी। अधिकांश ईसाई छात्र छात्रायें मिशन से वजीफा पाते थे। हड़ताल की और वजीफा बंद। मुसलमान छात्र, कुछ अपवादों को छोड़कर, कांग्रेस विरोधी थे। जमाना जिन्ना और लियाकत अली का था। मुस्लिम लीग के आंदोलन का गढ़ उन दिनों संयुक्त प्रांत (यू० पी०) ही तो था। छात्रों की कोई समस्या हो तो उन्हें भी साथ लिया जा सकता था। आगरा कॉलेज की हड़ताल में वे हमारे साथ थे ही। किन्तु राजनैतिक आंदोलन में वे हमारा साथ देंगे, इसकी परख अभी होना बाकी थी।

एक और कॉलेज था—बलवंत राजपूत इंटर कॉलेज। अधिकांश छात्र या तो राजपूत या जाट जमींदारों के बेटे। वे तो पुश्त दर पुश्त अंग्रेजों के 'खैरख्वाह' हुआ करते थे। उनका रवैया क्या रहेगा, हम नहीं जानते थे। सेंट जॉन्स कॉलेज का भार मेरे सर पर था। इस कॉलेज में आज तक कभी कोई हड़ताल नहीं हुई थी।

हॉस्टल में चक्कर लगाने पर आश्वस्त हुआ कि 10 अगस्त को मेरी नाक नहीं कटेगी। सभी ने हड़ताल में भाग लेना स्वीकार किया। वहां से छूटते ही पहुंचा 'बाबू के रेस्तरां'।

'बाबू के रेस्तरां' पर सभी मिल गए। सभी व्यग्र थे, सभी आशंकित थे—हड़ताल हो सकेगी? न हो सकी, तो कितने शर्म की बात साबित होगी? ईसाई लड़कियां मुसलमान लड़के—उन्हें कैसे रोकेंगे अन्दर जाने से? पुलिस क्या चुपचाप खड़ी तमाशा देखती रहेगी? जैसे ही मैं पहुंचा, प्रश्नों की बौछार होने लगी मुझ पर। और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न जो हर कोई बार-बार कह रहा था, वह था—सेण्ट जॉन्स में, आज तक कभी हड़ताल नहीं हुई। सेण्ट जॉन्स और आगरा कॉलेज में बड़ा फर्क है। इसीलिए तो आगरा कॉलेज वाले इसे कन्या पाठशाला कहते हैं।

सच कहूं तो यही समस्त आशंकाएं मेरे अंदर भी गहरी पैठी हुई थीं। विद्यार्थी संघ का उपमंत्री था उन दिनों। मेरी इज्जत अचानक दांव पर आ लगी थी। अगर कल हड़ताल न हो सकी तो क्या मुंह दिखाऊंगा

टंडनजी पदम और शुक्ला को ?

उस रात हम लोग रीब ग्यारह बजे तक परस्पर सलाह मशवरा करते रहे। मुझे अभयदान दिया लाखन सिंह ने—"जरा सी भी फिक्र मत करो, मैं किस दिन काम आऊंगा ? बस तुम साढ़े नौ बजे कालेज पहुंच जाना। मैं आठ बजे से ही इन्तजाम में जुट जाऊंगा।"

लाखन सिंह ईसाई था लेकिन कैसा ? धार्मिक संकीर्णता के मामले में मैंने ईसाइयों को भी उन समस्त रोगों से ग्रस्त पाया है जिनका आम हिंदू या आम मुसलमान भारतीय शिकार हुआ करता है। मसलन, छुआ छूत, दहेज का लेन देन, भूत प्रेत से भय इत्यादि। लाखन सिंह और उसका परिवार इन रोगों से मुक्त था। जब तक कोई बताए नहीं, आपको अंदाज ही न हो कि ये लोग ईसाई हैं।

लाखन मारे कालेज में 'उस्ताद' के नाम से मशहूर वैसे ही नहीं हो गया था। खुद तो सिर्फ बी० ए० पास थे हजरत पर एम० ए० इंगलिश के तीन-चार छात्रों को मुफ्त पढ़ाते रहते थे। भूगोल और अर्थशास्त्र में भी उसका लोहा अच्छे अच्छे मानते थे। बी० ए० पास किए दो वर्ष बीत चुके थे तथापि नित्य प्रातःकाल नौ बजे पाजामा कमीज पर कोट डाल साइकिल पर सवार होकर मिश्र दरों के पास अपने मकान से चलकर कालेज आ पहुंचता था। हंसमुख, हाजिर जवाब विविध विषयों पर संक्षिप्त, किन्तु, सटीक राय देने वाला लाखन सिंह हम सबका वाकई उस्ताद था—मेरा तो विशेष रूप से था, क्योंकि बी० ए० की परीक्षा के दिनों में दस बजे रात से प्रातःकाल चार बजे तक बिला नागा मैंने उससे अंग्रेजी के चारों पेपर्स पढ़े थे और, स्वीकार करूं कि उसने जिस प्रकार पढ़ाया था, मुझे उन पेपर्स में अच्छे नम्बर मिल सके थे।

बहरहाल, जब लाखन सिंह ने हड़ताल सफल बनाने का जिम्मा ले लिया तो मैं निश्चिन्त हो उस रात घर लौटा था। दूसरे दिन साढ़े नौ की बजाय नौ बजे ही कॉलेज जा पहुंचा था मैं। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ था यह देख कर कि लाखन पप्पू और पांच छः अन्य हास्टलवासी मेरे मित्रों सहपाठियों ने कालेज में प्रवेश करने वाले पांचों फाटकों पर पांच पांच छात्रों को पिकेटिंग के लिए तैनात कर रखा था। मैं पहुंचा तो—"क्या पता पुलिस

तुम्हें गिरफ्तार कर ले, या लाठी मार मार कर इस काबिल ही न छोडे कि तू चाय पी सके। सो कॉमरेड पहले एक एक कप चाय तो पी ही ली जाय," कहते लाखन मुझे हमारे रेस्तरा म ले गया। पप्पू और दो और सहपाठी साथ थे।

तनावपूर्ण मानसिक स्थिति को मज़ाकों द्वारा सहज करने का निष्फल प्रयास करते रहे थे हम उस समय। चाय खतम हुई तब तक कालेज का घण्टा बजने लगा था। ठीक पौने दस से हर आधे मिनट बाद टन टन करता यह घण्टा सैकडो छात्र छात्राओ को नित्य आमन्त्रित करता रहता था। हम सब उसकी ध्वनि के आकर्षण से मन्त्र मुग्ध से कॉलेज का रुख किया करते थे। पर आज इस घंटे का जादू व्यर्थ सिद्ध होने जा रहा था। हम सब उठ खडे हुए। चाय पीते हुए ही यह तय हो गया था कि पप्पू मुख्य प्रवेश द्वार पर रहेगा और मैं और लाखन खडे होगे डेविस हॉस्टल के सामने वाले द्वार पर।

डविस हॉस्टल हमारे कालेज की छात्राओ का हॉस्टल है। अधिकाश ईसाई लडकियों का। पचास साठ छात्राए यदि झुण्ड बनाकर कॉलेज मे घुस पडी तो हमारी एक न चलेगी। उस जमाने म लडकियो से अभद्र व्यवहार करने, उन पर तानाकशी करने की बात भी हम लोगो के दिमाग म नही आती थी। यहा लाखन सिंह की उपस्थिति बहुत आवश्यक थी। उसे वे लडकिया न केवल अच्छी तरह जानती ही थी, उसका लिहाज़ भी करती थी। वह उन्हें पाठ्य क्रम म सहायता जो दिया करता था। लाखन की बहिन मेरी सहपाठिनी थी। उसी के कारण यह सभव होता था। आज लाखन न उस भी समय से पहिले ही डेविस हॉस्टल मे भिजवा दिया था।

दस बजने म पाच मिनट बाकी थे कि देखा हमारे प्रिंसीपल, रेवरेंड कनन टी० डी० सले, सडक पार कर उसी द्वार पर आ पहुचे। उनका बगला डेविस हॉस्टल के पास ही था। सले साहब का देखते ही हम लोगो की नारेबाजी तेज हो गयी—"अग्रेजो भारत छोडो', "हमारे नेताओ को रिहा करो" आदि-आदि। लडकिया सडक क उस पार खडी तमाशा देख रही थी। हमारे पास भीड बढती जा रही थी।

"मनमोहन, व्हाट इज ऑन दिस ?' सले साहब आवेश मे मुझसे पूछ

रहे थ।

'नथिंग सर, वी आर ऑन स्ट्राइक टु डे," मैंने उत्तर दिया।

'बट वट व व्हाइ? व्हाट हैव आइ डन?' आवेश म सले साहब हकलाने लगते थे।

'नो सर इट इज नाट अगे स्ट यू ऐट आल,' मैंने उन्हे आश्वस्त किया, इट इज टु प्रोटेस्ट अग स्ट द ऐरेस्ट आफ आवर नेशनल लीडस।"

"ओह, आ, एम सो रिलीन्ड। बट ," और उसके बाद उन्होंने जो कहा वह इतना अप्रत्याशित, इतना स्नेह जटिल और इतना आतरिक उच्छवासपूण था कि हम सब सक्त म रह गए थे। उन्होने कहा था कि यदि हम पिकेटिंग ही करना है तो सडक पर खडे रह कर न करें, कालेज कम्पाउण्ड म आकर करें, क्योकि सडक पर वे पुलिस स हमारी रक्षा नही कर सकेंगे। कॉलेज कम्पाउण्ड म बिना उनकी आज्ञा क पुलिस अदर प्रवेश नही कर सकगी।

इतना कहकर सले साहब कॉलेज म प्रवेश कर गए। उन्हें रोकना हम अभीप्ट भी नही था। परतु हम सबको काफी कुछ क्षण लग थ पुन सहज होने म। सल साहब अंग्रेज थे और तब तक हम नारे लगा रहे थे—'अंग्रेजो भारत छाडो।' सले साहब क चले जान क बाद, मरी हिम्मत ही नही पडी इस नारे को दुहराने की। किस मुह म ऐस अंग्रेज को भारत छोडने की बात कही जाए?

तो उस दिन हमारी हडताल पूण सफल रही—सट जॉस कॉलिज के इतिहास की पहली हडताल। हम पर पुलिस की लाठिया भी नहीं बरसीं, क्योकि कुछ ही देर बाद हम जुलूस बनाकर चल पडे थ नागरी प्रचारिणी सभा की ओर जहा छात्रो की महती जनसभा होन वाली थी।

उस जन सभा का सभापतित्व किया था कानपुर क छात्र नेता सायी धमवश सिह न। धमवेश उन दिनो यू० पी० छात्र सघ के महामत्री थ और किसी कारणवश आगरा आए हुए थे। सभा म भाषण दिए थे, कान्ती चरन पाडे गरदार नग नि सिह और मैंने। हमे मालूम था कि इस सभा म बोलने का अथ होगा कि हमारे नाम वारण्ट कट जायेंगे।

वही हुआ भी। मुझ मेरे बड़े मामाजी ने नानी की बीमारी का बहाना

बनाकर ग्वालियर भिजवा दिया दो दिन बाद ही, ताकि मैं पकडा न जाऊ। ग्वालियर देशी राज्य था और वहा मेरे छोटे मामाजी नौकरी करते थे। परन्तु पार्टी का आदेश था कि जिस किसी के नाम वारण्ट निकले वह भागे नही। अतएव ग्वालियर पहुच कर जब मैंने देखा कि मेरी नानी पूर्ण स्वस्थ हैं, तो यथासभव शीघ्र मैं वापस आगरा लौट आया। 26 अगस्त को। मैंने बहाना बनाया था कि मुझे कॉलेज से अपनी छात्रवृत्ति की रकम लेनी है। कॉलेज जाकर रकम वसूल की और वही से चला गया पप्पू से मिलने।

देखा वहा बैठा था दीपनारायण सिह। अत्यन्त मेधावी छात्र। मैथमटिक्स म एम० ए० कर रहा था। ग्वालियर मे बी० ए० पढते समय से ही मार्क्सवाद म रुचि लेने लग गया था। स्टूडेण्टस फेडरेशन का एकछत्र नेतत्व किया था ग्वालियर म। आगरा आकर हम सबके साथ भी घुलमिल चला था। मेरे कालेज के बिशप फ्रेंच हॉस्टल म रहता था।

लम्बा, तगडा, छोटी छोटी आखें, चपटी सी छोटी नाक, काला रग, मोटा चश्मा। मोटी स मोटी खादी का ढीला कुर्ता, उतनी ही मोटी खादी की धोती जो प्राय मली रहती। सामान्य म कुछ अलग स्वर जो खुशी मे और भी अधिक भिच जाता। बातें अधिकतर अपने बारे म ही करना प्रिय था उसे, मसलन, विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर मे उसने प्रोफेसरो और प्रिंसीपल से कैसे कैसे मोर्चे लिए। अटल बिहारी बाजपेयी को कब और कैसे शिकस्त दी। प्रो० गुरु प्रसाद टडन से कब झडपें हुइ।

खुद को 'किसान का बेटा' कहा करता था दीप नारायण। बडा गर्व था उसे अपनी इस किसानियत का। और उससे भी अधिक गर्व था उसे स्तालिन पर। अध भक्त समझिए। किन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी की सदस्यता न मिली थी अब तक—न ग्वालियर मे, न आगरा मे। हम लोग उसे पार्टी का 'आनररी' सदस्य कहा करते थे, मजाक मे। पार्टी सदस्यता से वचित रहने की एक बडी वजह थी उसकी आत्म परकता। 'मैं', 'मैंने' और 'मुझको' कुछ इतना अधिक रहा करता था उसमे कि आप उसकी इज्जत तो कर सकते थे, किन्तु उससे प्यार कर पाना सचमुच कठिन था। निश्छल ईमानदारी, स्पष्टवादिता, सच्चरित्रता, निर्भीकता तथा प्रखर मेधा—सभी

गुण उसम थे। तथापि, वह लोकप्रिय नही बन पाया था—इसी आत्म केन्द्रिता के कारण।

स्वीकार करता हू कि मैं भी उसे अधिक पसन्द नही कर पाया था, बावजूद इस तथ्य के कि उन दिनो मार्क्सवादी छाया की खोज म रहा करते थे हम सब। जहा कही गंध भी आ जाती कि अमुक छात्र 'सिम्पेथ टिक' है हम लपक कर उससे घनिष्ठ होने की चेष्टा म लग जाया करते थे। मैं बहुधा उसमे मजाक मे कह बैठता था—

'चम्पा तो मे तीन गुण
रूप, रग अरु बास,
अवगुण तो मे एक है
भ्रमर न आवत पास।'

तो ऐसे दीपनारायण को उस शाम पप्पू के कमरे मे बठा देख मुझे बडा आश्चय हुआ था। और बेहद हसा था मैं उसकी हुलिया देखकर। कुर्ता धोती गायब। कोट पेण्ट पहन कसी अजीब हुलिया बना ली थी उसने। पता चला कि हजरत 'अण्डर ग्राउण्ड' हैं। करो या मरो म लगे हुए है पिछा पन्द्रह दिन से। कम्यूनिस्टो से बेहद नाराज हैं कि वे इस 'राष्ट्रीय सग्राम की विरोधिता कर रहे है। मुझे देखते ही बरस पडा था दीपनारायण सिंह। कहने न कहने की सारी बातें उस एक घण्टे म हमने एक दूसरे को जो खोल कर सुना दी थी। हम दोनो की बहस जो प्राय शिष्ट गाली गुफ्तार्क्क लक्ष्मण रेखा अब लाघे—तब लाघे वाले स्तर पर आती जा रही थी उसे पप्पू मूक श्रोता बना सुनता रहा था। बहुत मुमकिन है वह स्वय तय नही कर पाया था कि इस 'सन बयालीस के विद्रोह' का साथ दिया जाय कि नही। इतना आसान था भी तो नही यह प्रश्न। सारा राष्ट्र इसी ऊहापोह मे पडा हुआ था उन दिनो।

प्राय एक घटे की तू-तू मैं मैं क बाद दीपनारायण ने विदा ली। कह रहा था कि किसी 'एक्शन' मे जाना है। मैं भी इस झाय झाय म बोर हो चुका था। करीब 20 25 मिनिट बाद वहा स चलकर घर आ गया। सतोष मुझे केवल इतना ही था कि चलने मे पहले मैं पप्पू को यह समझाने म सफल हो सका था कि तोड फोड का राष्ट्रीय आदोलन की सज्ञा

कदापि नही दी जा सकती।

दूसरे दिन सुबह 10 बजे मैं गिरफ्तार कर लिया गया—भारत सुरक्षा कानून की धारा 129 के तहत। दो महीने के लिए 'डेटेन्यू' रहना था अब आगरा की सेन्ट्रल जेल मे। जेल पहुच कर देखा कि दीपनारायण सिंह भी वहा मौजूद है। पप्पू के घर से निकलने के कुछ देर बाद ही उसे गिरफ्तार कर लिया गया था। और जेल मे आते ही उसका तेज़ झगड़ा हो गया था श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल से जो उन दिनो यू० पी० कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। पालीवालजी नित्य सायकाल गीता पर प्रवचन देते थे। उस दिन अपने प्रवचन मे वे स्तालिन को मा बहन की गालिया दे रहे थे। दीपनारायण भी वही बैठा था। तुरत उठकर पालीवालजी की गालिया उन्हें हो तुर्की बतुर्की वापस लौटाने लगा। बस उसी क्षण से दीपनारायण फिर से मार्क्सवादी हो गया।

मेरे दो महीने के जेल प्रवास के दौरान दीपनारायण हमारे जेल कंसोलिडेशन सेल का बाकायदा सदस्य बना रहा। अपनी स्पष्टवादिता के कारण उसे एक बार और झडप लेनी पडी थी—श्री महावीर त्यागी से। उस झडप का अत हुआ था त्यागीजी द्वारा उससे सार्वजनिक तौर पर क्षमा-याचना करने के बाद। इन दो महीनो मे हम बहुत निकट आ गये थे।

बहुत वर्षों पश्चात् एक बार सुना था कि दीपनारायण सिंह फतेहपुर का नामी वकील हो गया था और हो गया था वहा की बीडी मजदूर सघ का नेता। फिर कुछ समय पश्चात किसी ने बताया था कि वह एम० एल० ए० चुन लिया गया था। अब वह कहा है, पता नही। प्रखरता और उसके ग्राम्य व्यवहार की स्मृति आज भी तरोताजा है।

दो महीने बाद जेल से छूटा तो मैंने खुद को अपने कॉलिज का छोटा-मोटा हीरो बना पाया। साठ दिन के इस छोटे-से अरसे मे ही कई परिवर्तन भी स्पष्ट दिखाई दिये। सबसे बडा और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था कि मेरा सहपाठी, और श्री कृष्ण चन्द्र खन्ना का छोटा भाई बिशन खन्ना कम्यूनिस्ट पार्टी का बाकायदा सदस्य बन गया था। उसी के साथ-साथ, श्री राजेन्द्र रघुवशी भी पार्टी मे आ गये थे।

बिशन और राजेन्द्र रघुवंशी बड़े गहरे दोस्त थे—एक जान, दो कालिब। छुटपन से ही नाटकीय। राजेन्द्र रघुवंशी तो आज इप्टा (भारतीय जन नाट्य संघ) के अखिल भारतीय नेता हैं। बिशन ने भी बम्बई में पहले इप्टा में, और बाद में स्व० बलराज साहनी के साथ अनेक फिल्मों में, विभिन्न भूमिकायें निभाई।

किन्तु अभी तो बात 1942 की ही करूं। जेल जाने से पहिले 10, 11 और 12 अगस्त को कॉलेज में हड़ताल रही। 12 अगस्त को विद्यार्थी संघ ने हड़ताल समाप्त करने का फैसला लिया। उस दिन जब मैं कॉलेज के मुख्य प्रवेश द्वार पर खड़ा यह घोषणा करने लगा, तो बिशन खन्ना ने क्या क्या गालियां नहीं दी थीं, मुझे, कम्यूनिस्ट पार्टी को। 'गद्दार' करार दे दिया था हम।

अब वह बिशन पार्टी का सदस्य हो गया था। किमाश्चर्यमतः परम! यह परिवर्तन क्या और कैसे हुआ, मैं नहीं जानता। पर इतना अवश्य जानता हूं कि उसके बाद जब तक आगरा रहे, बिशन खन्ना पार्टी का उतना ही कट्टर भक्त रहा जितना कट्टर वह पहले उसका दुश्मन था। बिशन बेहद भावुक जो था।

पार्टी में आ जाने के बाद उसका पप्पू के घर आना-जाना बहुत बढ़ गया। अब वह हर बात में पप्पू को सलाह भी देने लगता, उसकी आलोचना भी कर बैठता। कदाचित् उसको लगता था कि पप्पू भी प्रायः कम्यूनिस्ट है ही अतएव अब वह उसकी बात अधिक गम्भीरता से लेगा।

पप्पू पर इसकी बिलकुल उल्टी प्रतिक्रिया होती थी। पप्पू उसके बड़े भाई का मित्र था। अतएव उसने बिशन को सदा अपने से बहुत जूनियर माना था। यों भी पप्पू अपनी आलोचना कदाचि बर्दाश्त नहीं कर पाता था। इस मामले में उसका अहम बहुत विस्फारित था। जिन्हें वह अपना समकक्ष स्वीकार कर लेता, उनकी आलोचना वह फिर भी सहन कर लेता। किन्तु बिशन को उसने हमेशा बहुत छोटा माना था। उसे वह कैसे बर्दाश्त करता?

एक छोटा-सा किन्तु बड़ा मनोरंजक, प्रसंग याद आ गया। कम्यूनिस्ट पार्टी के हिन्दी साप्ताहिक 'सारथी', का सम्पादन करते थे कॉमरेड रमेश

सि हा। उनके दो-तीन पत्र पप्पू के पास आये, "कविता भेजिये।" पप्पू ने एक 'मार्चिंग सौंग' लिखा और प्रेषित कर दिया। उन दिनो जोश मलीहाबादी का एक गीत बडा लोकप्रिय हुआ था—रवा दवा बढे चलो। उसी शैली म पप्पू ने लिखा—

ये फरफरा उठी हवा
ये खेत लहलहा उठे,
कि जि दगी की आबरू
पुकार गीत गा उठे
कि जिनकी मेहनतो पे
पल रहा है पेट विश्व का
कदम मिला गरज उठो
बढे चलो, बढे चलो।
गगन मे लाल सूय है
चमक उठा, दमक उठा,
कि लाल झण्डा सर उठा
लहर लहर फहर उठा,
महल की रोशनी है मद
क्रा ति है बुला रहा
बिरादराने नौजवा[1]
बढ़े चलो, बढे चलो।

जब तक यह गीत लिखा नही गया था, बिशन रोज सुबह आकर तकाजा मार जाता था—'पप्पू भाई, रमेश सि हा ने आगे बढ के—कविता मागी है। कितनी बडी इज्जत की बात है। लिखो भैय, कुछ बढ़िया सी चीज लिख के जल्दी स भिजवा दो।" पप्पू ने जाने क्यों 'लोक युद्ध' म अपनी रचना भेजने स कतरा रहा था। टाल जा रहा था। जब दो-तीन पत्र आ गए तो मैंने भी आग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। टडनजी न भी।

1 इस पक्ति के विषय में मैं निश्चित नहीं हूं।

आखिर पप्पू ने यह गीत भेज ही दिया। दो तीन सप्ताह बाद गीत छप भी गया 'लोकयुद्ध' के अंतिम पृष्ठ पर। किंतु रमेश सिन्हा ने सम्पादकीय अधिकार का उपयोग कर इसमें से सारे 'कि' काट दिए थे। इन 'कि' के अभाव में गीत पंगु हो गया था। अंक आया तो, हम सब धक रह गए। यह क्या किया कामरेड सिन्हा ने? पप्पू तो साक्षात अग्निशर्मा बन गया था उस सुबह।

उसकी बैठक में बैठे हम सब दांत किचकिचा रहे थे। उसी समय पधारे कामरेड बिशन खन्ना। "बधाई हो, पप्पू भये कविता छप गई। मजा आ गया। क्या साब अब तो तुम्हारा सारे देश में नाम हो गया।"

पप्पू के तो तन बदन में आग लगी हुई थी। वह चुप रहा। बिशन ने मेरी ओर देखकर आंखों आंखों में पूछा— "क्या बात है?" मैंने धीमे से उसे बताया कि क्या घट गया है। और कोई होता तो बात संभाल ले जाता। पर बिशन खन्ना भला क्यों चुप रहता? फौरन बोल उठा, "तो इसमें इतने अफसोस की क्या बात है? साब, मेरी राय में तो अब ये कविता और भी बढ़िया हो गयी है। लफ्फाजी थोड़े ही चले है कम्यूनिस्ट पार्टी के पेपर में। रमेश सिन्हा इत्ते बड़े सम्पादक हैं। उन्होंने कुछ सोच समझकर ही ये तरमीम करी होगी, पप्पू भाई।"

पप्पू बमक उठा, "बिशन, जो बात समझ में न आए उस पर राय क्यों दे रहा है? यह साहित्य है, कविता है। पार्टी का मेनिफेस्टो नहीं है कि जो तबीयत आए लिख दो।" बगरा-बगरा क्या कुछ नहीं कह दिया था पप्पू ने उस दिन।

नतीजा यह हुआ कि पप्पू ने भविष्य में 'लोकयुद्ध' में कभी कुछ न छपवाने की कसम खा ली और कामरेड रमेश सिन्हा को भी अपने इस निश्चय की सूचना दे दी।

मुझे आज भी विश्वास है कि यदि उस दिन बिशन ने यह सब न कहा होता तो बात इस हद तक न जाती। कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रति उसके मन में यह पहली दरार आयी थी। बाद में तो इस प्रेम का धागा अनेक बार चिटक कर टूटा, और जब जब टूटा, उसकी गांठों में इजाफा होता गया।

दरअसल, पप्पू अपने लिखे की आलोचना सह पाने मे शुरू से ही असमर्थ था। उसकी व्यक्तिगत आदतों के बारे मे उसे कोई कुछ भी कह ले वह बुरा नहीं मानता था। परन्तु यदि किसी ने उसके लेखन को खराब या गलत कह दिया, तो वह कहने वाले की जान को आ जाता। उसकी नीयत पर शका करने लगता। यह कमजोरी उसमे शुरू स ही थी और आखीर तक रही। इससे उसे काफी नुकसान भी हुआ। पर रहा अन्त तक अपनी आदत से लाचार। अपनी रचनाओ को घटिया कहने का अधिकार वह केवल अपना मानता था, सिर्फ अपना।

कम्यूनिस्ट पार्टी की सदस्यता उसन कभी नही स्वीकारी, यद्यपि मैं खुद गवाह हू कि उस कई बार आमन्त्रित किया गया था। मैं भी उस यही सलाह देता रहता था कि वह पार्टी का चाहे जितना काम करे, सदस्य कभी न बने। कारण, कि मैं उसके अहम् के विस्तार से बखूबी परिचित था। उसम रचे बसे सामन्ती और उच्च मध्यम वर्गीय सस्कार उसे पार्टी के कठोर अनुशासन मे रहने न देते और उसे बार बार झगडा करना पडता।

किन्तु यह तो आगे की बात कर बैठा। सन 1942 के नवम्बर-दिसम्बर की सबस प्रमुख घटना थी स्तालिनग्राद मे लाल फौज द्वारा बर्बर हिटलरी नाज़ी फौजो को दी गई मुह-तोड शिकस्त। उन दिनों सारे ससार की आखें वोल्गा तट पर अवस्थित इस नगर की ओर लगी हुई थी। स्तालिन का नाम दिया गया था इस नगर का, जिस पहिले त्सारित्सिन कहा जाता था। कदाचित् इसी कारण हिटलर की जीभ इस नगर को निगल जाने के लिए लपलपा रही थी। उसकी दृष्टि मे स्तालिनग्राद का जीतने का मनोवैज्ञानिक अर्थ स्वय स्तालिन का जीत लेना था।

पिछले डेढ वर्ष मे नाज़ी फौजें जिस आसानी स सोवियत यूनियन म धसती चली जा रही थी उसस ससार के स्वतन्त्रता-प्रेमी, फासिस्ट विरोधी गभीर चिन्ता और आशका म पड गय थे। अवश्य ही मॉस्को और लेनिनग्राद निवासी भी अपने-अपने नगर की रक्षा मे अदम्य साहस, वीरता, बलिदान और शौर्य की नित नई मिसाल कायम करते जा रहे थे।

किन्तु स्तालिनग्राद तो और भी कई कदम आगे जा पहुचा था। पाच

लाख नागरिकों का यह नगर वाल्गा नदी के तट पर बसा था। यहा वोल्गा पश्चिम की ओर मोड लेती है। इसीस प्राय चालीस किलोमीटर की दूरी पर एक और सुप्रसिद्ध रूसी नदी है—दोन। हिंदी साहित्य प्रेमी इन दोनो नदियो के नाम से भली भांति परिचित हैं, राहुलजी की 'वोल्गा से गंगा' तथा रूसी उपन्यासकार मिखाइल शोलाखोव के अमर उपन्यास 'धीरे बहे दोन रे' (एण्ड क्वायट फ्लोज़ द डोन') के कारण।

सन 1919 20 मे स्तालिनग्राद ने एक और भीषण युद्ध देखा था। तब इसे त्सारित्सिन कहा जाता था। ससार के समस्त पूजीवादी साम्राज्यवादी देशो न सन 1917 की साम्यवादी क्रांति के बाद सोवियत यूनियन की स्थापना के साथ साथ ही, मजदूर किसानो के इस प्रथम राज्य को मटियामेट कर देने का षडयन्त्र करना आरम्भ कर दिया था। फल स्वरूप 1919 मे प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के तुरत बाद रूस मे गृह युद्ध छिड गया था। साम्यवाद के विरुद्ध बोले गये जिहाद मे पूजीवादी देशो ने, अपनी परम्परा का निर्वाह करते हुए रूस के समस्त क्रांति विरोधियो को प्रचुर धन और अस्त्र शस्त्र की सहायता देना प्रारम्भ कर दिया था।

उस समय इस मोर्चे की कमान सभालने लेनिन ने स्वयम स्तालिन और वोरोशिलोव को भेजा था। वह सग्राम भी सोवियत यूनियन के अस्तित्व के लिए निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ था। दो दशक बीतते-न-बीतते उसी नगर को एक बार फिर अपने अस्तित्व की लडाई मे झोक दिया गया था।

तो नवम्बर दिसम्बर 1942 मे स्तालिनग्राद मे छिडे प्रचण्ड युद्ध मे विजय किसकी होगी, इसकी प्रतीक्षा सारा ससार सास रोके कर रहा था। ठीक उसी तरह जस कुछ वर्षों पूर्व अमरीकी फौजों द्वारा ढाये जा रहे विनाश के ताण्डव के सम्मुख वियतनाम के प्रतिरोध का क्या हश्र होना है, इसकी व्यग्र प्रतीक्षा की थी हम सबने।

सितम्बर 1942 मे जनरल फान पाउलस की कमान मे बाईस डिवीजनो ने स्तालिनग्राद पर सर्वात्मक हमला बोला था। सोवियत सेना की मात्र सोलह डिवीजन उनका मुकाबला कर रही थीं। कौरवो की अठारह अक्षौहिणी के मुकाबले मे पाण्डवों की ग्यारह अक्षौहिणी के समान।

कल्पना करना भी कठिन है कि इस एक नगर मे लगातार तीन महीनो

तक रात दिन घनघोर लडाई चलती रही थी। एक-एक मकान के एक-एक तल्ले पर तीन तीन चार चार दिन तक सिपाही परस्पर गुथे रहे थे। नवम्बर आते आते पासा पलटना शुरू हो गया। जनरल जुकोव ने प्रत्याक्रमण प्रारम्भ कर दिया। नाजी फौजें चारो ओर स घिरती चली जा रही थीं और घेरा तेजी स छोटा होता चला जा रहा था।

इस युद्ध का अ त हुआ था फरवरी 1943 म जब फान पाउलस को अपने तीन लाख से भी अधिक सिपाहियो को मौत के घाट उतरवा देने के के पश्चात बाकी बचे लाखो सिपाहियो के साथ बिना शत आत्म समपण करना पडा था, ठीक जैसे जनरल नियाजी न बागला देश म जनरल जगजीत सिह अरोरा के सम्मुख किया था।

स्तालिनग्राद के इस युद्ध की इतनी विशद चर्चा मैंने जान-बूझकर की है। उन दिनों हम युवको के मन मस्तिष्क पर इस सग्राम का कितना गहरा प्रभाव पडा था, इसका जीव त दस्तावेज है पप्पू का 'अजेय खडहर'।

पहले उसने इसका नाम दिया था 'स्तालिनग्रेद'। योजना बनायी थी कि इसके प्रत्येक पद का अ तिम शब्द स्तालिनग्रेद ही रखेगा। इसी झोंक मे दस-बारह पद लिख भी डाले। कि तु फिर शीघ्र ही यह योजना बदल देनी पडी थी उसे। प्रास जो तेजी से समाप्त होते चल जा रहे थे। और, मेरी समझ मे यह अच्छा ही हुआ, अ यथा बडी कृत्रिम हो जाती यह समूची पुस्तक—अग्रेजी सॉनेट सरीखी।

'घरौंदे' की भाति, मैं 'अजेय खडहर' की रचना प्रक्रिया का भी प्रत्यक्षदर्शी रहा हू। उस समय जितने भी समाचार-पत्र-पत्रिकायें उपलब्ध हो सकती थीं, उन सबका पप्पू सग्रह करता था, घण्टो अध्ययन करता था। कॉलेज-लायब्रेरी मे इंगलैंड से 'टाइम्स', 'इलस्ट्रेटेड लदन वीकली' आदि आ जाते थे। वह उ हें भी चाट जाता। विशद नोट्स बनाता। जहा सम्भव होता, कटिंग रख लेता। इन अखबारो से भी अधिक मसाला उसे सोवियत पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं स मिल जाता था।

हिटलरी हमले का एक अप्रत्यक्ष लाभ यह हुआ था कि भारतवष म अब सोवियत प्रकाशनो, पत्रिकाओ और पुस्तकों का अग्रेजी शासक अपक्षाकृत आसानी से आ जाने देते थे। हमारे कॉमरेड पद्म कुमार जन तो पहले

से ही किताबो के कीडे थे । जहाँ भी, जो भी पुस्तक उन्हे महत्त्वपूर्ण लगी, चट खरीद ली । ढेर लगा दिया था भारत मे वध्र और अवैध ढग से उप लब्ध मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट साहित्य का ।

उधर श्री कृष्णा स्वामी तथा रामन्ना शास्त्री अपनी 'सोशलिस्ट लिट रचर सीरीज' म सस्ते दाम की किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, साम्यवादी पुस्तको का प्रकाशन धडल्ले स कर रहे थे । इन दोनों की जोडी विचित्र थी। दाक्षिणात्य, पुराने क्रातिकारी, वर्षों स यू० पी० म आ बसे थे। आगरा में रह रहे थे उन दिनो । कभी पार्टी सदस्य नही बन । किन्तु युद्ध छिडने पर, गिरफ्तार कर देवली कैम्प मे नजरबन्द कर दिये गये थे। साम्यवाद को प्रबुद्ध जनता तक पहुचाकर उसे लोकप्रिय बनाने मे इन दोनो का योगदान अविस्मरणीय रहेगा, इसमे कोई सन्देह नही ।

पप्पू इन दोनो सूत्रो से लाभ उठा लेता था । पदम और शास्त्री स्वामी दोनो प्राय उसके यहा जाते रहते थे और उसे इनसे उसके काम की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें उपलब्ध हा जातीं। इस अध्ययन न साम्यवाद म उसकी आस्था और दढ कर दी । हिन्दू दशन तो उसे तमिल ब्राह्मण पुरोहित परिवार म जन्म लेने के कारण घुट्टी मे ही मिल गया था । अब वह इन दोनो का तुलनात्मक विवेचन कर पान की स्थिति म तेजी स आता जा रहा था ।

पप्पू का मानस साम्यवाद को भारत की समस्याओ के समाधान का श्रेष्ठतम हल इसीलिए मानने लग गया था क्योकि उसे अपन देश क गरीबों से सचमुच बेहद प्यार था। स्वय 'अजेय खडहर' इसका साक्ष्य पद-पद पर देता है । इस खण्ड काव्य म तीन लम्बे खण्ड भारतीय दृष्टिकोण से स्तालिनग्राद युद्ध का महत्त्व दिग्दर्शित करने के विचार से उसमें जोडे थे । आज मेरे सामने वह पुस्तक नही है । तथापि मात्र स्मृति के सहारे उसकी कुछ पक्तिया मेरी इस स्थापना की पुष्टि म उदधृत कर रहा हू—

एक जारित्सिन लडा था
एक स्तालिनग्रद
हिन्द क हित युद्ध दो यह
एक '
× × ×

'एक नगा वृद्ध
जिसका नाम लेकर मुक्त
होने को उठा मिल हिंद
कापते थे सिन्धु औ साम्राज्य
सिर झुकाते थे सितमगर त्रस्त
आज वह है बन्द
देश मेरे हिन्दुस्तान
बबर आ रहा जापान
जागो जिन्दगी की शान"

× × ×

"उठी हैं शक्ति फासिस्टी
कुचलना है हम इनको
बनेंगे दास मृत्युजय
चुका दो दप कातिल का
खडा हर मुल्क लडने को
कुचल दो आज पूजीवाद का
अतिम प्रयत्न विषाक्त यह
ओ गीत !"

भारतीय जन मन की स्वतन्त्रता-कामी भावना द्वारा लडे जा रहे सग्राम का एकमात्र प्रतीक पप्पू को सदैव महात्मा गाधी ही लगे थे, पूरनचन्द्र जोशी नही। तथापि, साम्राज्यवादी शोपण, दासत्व तथा दारिद्रय के विरुद्ध लडे जाने वाले सग्राम का तीक्ष्णतम हथियार उसे साम्यवाद ही मान्य था।

पहले ही चर्चा कर चुका हू उसके उस अमर गीत की—

"टेम्स हो या हो याग्सीक्याग
वोल्गा हो या गगा हो
सबकी एक लडाई है
दुनिया की आजादी की"

सच्चा देशभक्त कभी भी विश्व मानवता का विरोधी नही हो सकता। अपने देश के पीडित, शोषित सवहारा वग से आन्तरिक प्यार हुए बिना

से ही किताबो के कीडे थे । जहा भी, जो भी पुस्तक उन्हे महत्त्वपूर्ण लगी, चट खरीद ली । ढेर लगा दिया था भारत मे वैध और अवैध ढग से उपलब्ध मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट साहित्य का ।

उधर श्री कृष्णा स्वामी तथा रामन्ना शास्त्री अपनी 'सोशलिस्ट लिटरेचर सीरीज' म सस्ते दाम की किन्तु अत्य त महत्त्वपूर्ण, साम्यवादी पुस्तको का प्रकाशन धडल्ले स कर रहे थे । इन दोनो की जोडी विचित्र थी। दाक्षिणात्य, पुराने क्रातिकारी, वर्षों से यू० पी० म आ बसे थे। आगरा में रह रहे थे उन दिनो। कभी पार्टी सदस्य नही बने। किन्तु युद्ध छिडने पर, गिरफ्तार कर देवली कैम्प म नजरबन्द कर दिये गये थे। साम्यवाद को प्रबुद्ध जनता तक पहुचाकर उसे लोकप्रिय बनाने मे इन दोनो का योगदान अविस्मरणीय रहेगा इसमे कोई स देह नही ।

पप्पू इन दोनो सूत्रो से लाभ उठा लेता था । पद्म और शास्त्री स्वामी दोनो प्राय उसके यहा जात रहते थे और उसे इनसे उसके काम की पुस्तकें, पत्र पत्रिकायें उपलब्ध हो जातीं। इस अध्ययन न साम्यवाद मे उसकी आस्था और दृढ कर दी । हिन्दू दशन तो उसे तमिल ब्राह्मण पुरोहित परिवार मे जन्म लेने क कारण घुटटी म ही मिल गया था । अब वह इन दोनो का तुलनात्मक विवचन कर पाने की स्थिति म तेजी से आता जा रहा था।

पप्पू का मानस साम्यवाद को भारत की समस्याओ के समाधान का श्रेष्ठतम हल इसीलिए मानने लग गया था क्योकि उसे अपन देश के ग़रीबों स सचमुच बेहद प्यार था। स्वय 'अजेय खडहर' इसका साक्ष्य पद-पद पर दता है । इस खण्ड काव्य मे तीन लम्बे खण्ड भारतीय दष्टिकोण स स्तालिनग्राद युद्ध का महत्त्व दिग्दर्शित करने के विचार स उसमे जोडे थ । आज मरे सामने वह पुस्तक नही है । तथापि मात्र स्मृति के सहारे उसकी कुछ पक्तियां मेरी इस स्थापना की पुष्टि म उदधत कर रहा हू—

"एक जारित्सिन लडा था
एक स्तालिनग्राद
हिन्द के हित युद्ध दो यह
एक '

× × ×

"एक नगा वृद्ध
जिसका नाम लेकर मुक्त
होने को उठा मिल हिंद
कापत थे सि धु औ साम्राज्य
सिर झुकाते थे सितमगर त्रस्त
आज वह है ब द
देश मेरे हि दुस्तान
बर्बर आ रहा जापान
जागो जिन्दगी की शान"

× × ×

"उठी हैं शक्ति फासिस्टी
कुचलना है हमे इनको
बनेंगे दास मृत्युजय
झुका दो दप क़ातिल का
खडा हर मुल्क लडन को
कुचल दो आज पूजीवाद का
अतिम प्रयत्न विषाक्त यह
ओ गीत !"

भारतीय जन मन की स्वतन्त्रता-कामी भावना द्वारा लडे जा रहे सग्राम का एकमात्र प्रतीक पप्पू को सदैव महात्मा गाधी ही लगे थे, पूरनचन्द्र जोशी नही। तथापि, साम्राज्यवादी शोषण, दासत्व तथा दारिद्र्य के विरुद्ध लडे जाने वाले सग्राम का तीक्ष्णतम हथियार उसे साम्यवाद ही मान्य था।

पहले ही चर्चा कर चुका हू उसके उस अमर गीत की—

'टेम्स हो या हो यात्सीक्याग
वोल्गा हो या गगा हो
सबकी एक लडाई है
दुनिया की आजादी की"

सच्चा देशभक्त कभी भी विश्व मानवता का विरोधी नही हो सकता। अपने देश के पीडित, शोषित सर्वहारा वग से आन्तरिक प्यार हुए बिना

से ही किताबों के कीड़े थे। जहां भी, जो भी पुस्तक उन्हें महत्वपूर्ण लगी, झट खरीद ली। ढेर लगा दिया था भारत में वैध और अवैध ढंग से उपलब्ध मार्क्सवादी कम्युनिस्ट साहित्य का।

उधर श्री कृष्णा स्वामी तथा रामनाथ शास्त्री अपनी 'सोशलिस्ट लिटरेचर सीरीज' में सस्ते दाम की किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण, साम्यवादी पुस्तकों का प्रकाशन धड़ल्ले से कर रहे थे। इन दोनों की जोड़ी विचित्र थी। दाक्षिणात्य, पुराने क्रान्तिकारी, वर्षों से यू० पी० में आ बसे थे। आगरा में रह रहे थे उन दिनों। कभी पार्टी सदस्य नहीं बने। किन्तु युद्ध छिड़ने पर, गिरफ्तार कर देवली कैम्प में नजरबन्द कर दिये गये थे। साम्यवाद को प्रबुद्ध जनता तक पहुंचाकर उसे लोकप्रिय बनाने में इन दोनों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पप्पू इन दोनों सूत्रों से लाभ उठा लेता था। पद्म और शास्त्री स्वामी दोनों प्राय उसके यहां आते रहते थे और उन द्वारा उसके काम की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें उपलब्ध हो जातीं। इस अध्ययन ने साम्यवाद में उसकी आस्था और दृढ़ कर दी। हिन्दू दर्शन तो उसे तमिल ब्राह्मण पुरोहित परिवार में जन्म लेने के कारण घुट्टी में ही मिल गया था। अब वह इन दोनों का तुलनात्मक विवेचन कर पाने की स्थिति में तेजी से आता जा रहा था।

पप्पू का मानना मार्क्सवाद को भारत की समस्याओं के समाधान का श्रेष्ठतम हल इसलिए मालूम लग गया था क्योंकि उसे अपने देश के गरीबों से सचमुच बेहद प्यार था। स्वयं अपने 'मजदूर' [illegible] पर [illegible] है। [illegible] में [illegible] भारतीय [illegible] [illegible] का महत्व [illegible] के विचार से उसमें आड़े थे। आज [illegible] यह [illegible] नहीं है। तथापि, [illegible] के [illegible] उसकी कुछ [illegible] इस [illegible] की [illegible] उद्धृत कर रहा हूं—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
✗ / ✕

रा आज तक किया गया है और न सोवियत यूनियन
। हमारे देश मे तो रागेय राघव को स्व० भारत
नजाफ मे दिया गया फतवा कि पप्पू कागज तोतकर
, रांगेय राघव की 'स्टैंडर्ड' आलोचना मान लिया
आश्चर्य तब होता है जब मैं प्रतिवर्ष लक्ष्य करता
ती जैसी रचनाओ पर बडी आसानी से 'सोवियत
की बदौलत अर्थ और यश की सहज ही प्राप्ति हो
दो-तीन सप्ताह सरकारी मेहमान बन सोवियत
आते हैं, उनकी तुलना मे 'अजेय खडहर' किसी भी
वपूर्ण कृति है और न कम उत्कृष्ट साहित्यिक रचना

परिप्रेक्ष्य मे एक और बात याद आ गयी। इस
पार्टी सगठन को सुदृढ बनाने के विचार से आगरा
। डॉ० कुंवर मुहम्मद अशरफ पार्टी मे अखिल
थे। गजब के वक्ता, इतिहास के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति
बैठ जाय उस [illegible] के माहौल को गुलजार कर
ो सनम।
साहब [illegible] । पप्पू ने उन्हें

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा लगाने वाला प्राय बेईमान हुआ करता है। पप्पू बेईमान कदापि नहीं था।

पप्पू ने 'अजेय खडहर' लिखना शुरू कर दिया और हस्बमामूल अपना रोज का लिखा रोज अपने मित्रो को सस्वर सुनाने भी लगा। एक दिन बडी मजेदार घटना हुई। एक पद कुछ इस प्रकार था—

'तीन मास हा नब्बे दिन तक

हा, घटे इक्कीस सौ साठ।"

ये दो पक्तिया इस पद म बार बार दुहराई जा रही थी और पद अत होता था—

"रहे जमन खेत।"

तभी सुदर सिह चहक उठा, "अबे, ये तू कविता लिख रहा है कि एरिथमेटिक पढ़ा रहा है?" और इसी के साथ छतफोड-दीवाल तोड सामूहिक अट्टहास। उधर पप्पू? बेहद अप्रतिभ, बेहद झेपा हुआ, मानो दिगत व्यापी नभ की ऊचाइयो से कोई धम मे आ गिरे प्रशात महासागर के अतल तल मे। सुदर सिह ने उसकी जो यह हालत देखी तो और भी जोश म आ गया। 'कमाल है साहब। तीन महीने, नब्बे दिन और इक्कीस सौ साठ घण्टो तक लडाई चलती रही और खेत रह सिर्फ जमन? रूसी दस पाच भी नही मरे?" अब जो ठहाको का दौर शुरू हुआ उसमे, उस सुबह, पप्पू का यह अमर काव्य बेचारा बहते बहते बचा था।

स्तालिनग्राद के युद्ध ने सोवियत जमन युद्ध का पासा पलट दिया। हिटलर की योजना सोवियत यूनियन को दस सप्ताह मे नेस्तनाबूद कर अफगानिस्तान होकर दिल्ली जीत लने के पश्चात चीन विजय करने की थी। इस दूसरे सिकदर का विश्व विजयी वीर कहलाये जाने का स्वप्न चूर चूर हो गया था वोल्गा तट पर बसे स्तालिनग्राद मे। ऐसी करारी शिकस्त दी लाल फौज ने कि अब पीछे हटने की बारी आ गयी बबर नाज़ी फौजो की। लाल फौजो न जो अब आगे बढना शुरू किया ता दो वष बाद सीधे बर्लिन पहुच कर ही दम लिया।

इस महान सग्राम का अविस्मरणीय दस्तावेज़ है अजेय खडहर'। खेद केवल यही है कि इस कृति का सही मूल्याकन न तो हमारे हिन्दी क

धुरंधर आलोचकों द्वारा आज तक किया गया है और न सोवियत यूनियन के भारत-विदों द्वारा। हमारे देश में तो रांगेय राघव को स्व० भारत भूषण अग्रवाल द्वारा मज़ाक में दिया गया फतवा कि पप्पू कागज़ तौलकर लिखता था, आज भी रांगेय राघव की 'स्टैंडर्ड' आलोचना मान लिया जाता है। किन्तु मुझे आश्चर्य तब होता है जब मैं प्रतिवर्ष लक्ष्य करता रहता हूं कि आज जैसी जैसी रचनाओं पर बड़ी आसानी से 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' की बदौलत अर्थ और यश की सहज ही प्राप्ति हो जाती है, उनके लेखक दो-तीन सप्ताह सरकारी मेहमान बन सोवियत यूनियन की यात्रा कर आते हैं, उनकी तुलना में 'अजेय खंडहर' किसी भी अर्थ में न तो कम महत्त्वपूर्ण कृति है और न कम उत्कृष्ट साहित्यिक रचना है।

'अजेय खंडहर' के परिप्रेक्ष्य में एक और बात याद आ गयी। इस वर्ष डॉक्टर अशरफ को पार्टी संगठन को सुदृढ़ बनाने के विचार से आगरा भिजवा दिया गया था। डॉ० कुंवर मुहम्मद अशरफ पार्टी के अखिल भारतीय स्तर के नेता थे। गजब के वक्ता, इतिहास के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान और जहां बैठ जायं उस स्थान के माहौल को गुलज़ार कर देने की अपूर्व क्षमता थी उनमें।

एक शाम डॉक्टर साहब मेरे साथ पप्पू के घर गये। पप्पू ने उन्हें 'अजेय खंडहर' का एक खासा बड़ा अंश सुनाया और उनकी राय मांगी। डाक्टर साहब ने कहा "पप्पू, एक काम करो। क़रीब छः महीनों के लिए इसे भूल जाओ। छः महीने बाद जब तुम इसे पुनः पढ़ने बैठोगे तो इसकी कमज़ोरियों और पुख्तगी का फैसला तुम खुद ही कर सकोगे, क्योंकि तब तुम्हारी नज़र एक तटस्थ पाठक की नज़र बन चुकेगी।"

पप्पू ने ठीक यही किया और जब छः सात महीनों के बाद उसने दुबारा पढ़ना शुरू किया तो प्रथम प्रारूप में अनेक परिवर्तन कर दिये, अनेक पद दुबारा लिखे। कतई कोई कष्ट नहीं हुआ था पप्पू को ऐसा करने में। वह तो डॉ० अशरफ़ की इस सलाह के लिए बहुत कृतज्ञता अनुभव करता रहा बहुत दिनों तक। बाद में तो उसने अपने सृजन को छः महीने भूल जाने का नियम ही बना लिया था।

कदाचित इसी सलाह का प्रभाव था कि एक दिन मैंने उसे अपने सैकडा गीतो को रद्दी की टोकरी मे डालते अपनी आखो म दखा था। उसकी यह हरकत मुझे उस वक्त बहुत नागवार प्रतीत हुई थी। किन्तु पप्पू खुश था कि "कचरा छट गया।"

चार पाच वष मैं उसकी रचना प्रक्रिया का चश्मदीद गवाह रहा हू। लिखना उसकी आवश्यकता थी—प्राथमिक आवश्यकता शौक नहीं। इस मामले मे उसका मिजाज लडकपन से आशिकाना था। लेखन उसके लिए बडी सहज साधारण क्रिया थी। दूसरे लेखको की अपेक्षा चौगुना लिखा करता था। सुबह कविता, दोपहर को कहानी तो रात्रि म उपन्यास लिखकर वह अपनी थकान 1943 मे भी मिटा लिया करता था जब वह एम० ए० का विद्यार्थी मात्र था।

लेकिन अपने लिखे के प्रति इतना सजग और किसी हद तक निमम आत्मालोचक मैंने अपने बहुत कम लेखक मित्रो को पाया है। कागज तोलकर लिखन वाले' रागेय राघव को मैंने कागज़ तोलकर अपने लिख को फाडते भी दखा है।

यही एक बात और कह दू। अभी कुछ दिन पहले मैंने रागेय राघव पर लिखा गया एक शोध ग्रन्थ पढा। उसमे विद्वान शोधकर्ता न लिखा है कि रागेय राघव ने अतुका न कविताए इसलिए अधिक लिखी हैं क्याकि उन्हे तुक मिलाने म बडी कठिनता अनुभव होती थी। पता नही इस अनूठे तथ्य का पता उन्ह कहा स मिला था। सकडो गीत फाडने की चर्चा मैंने अभी की है। उस जमाने मे गीत केवल सतुकान्त होत थे, आज भी प्राय वही स्थिति है। वरन मैंन पप्पू का बहुधा कहते सुना था कि जब तक कोई कवि दा तीन सौ कवित्त, सवैये न लिख ले, उसे नई कविता करने का अधिकार ही नही दिया जाना चाहिए।

कागज़ तोल कर लिखन के सदभ म याद आया कि मैं पप्पू को 'स्ताखनोवाइट' कहा करता था। सोवियत यूनियन म उन दिनो स्ताखनोव नामक एक मजदूर बहुत प्रसिद्ध हो गया था, क्योंकि वह अपने निर्धारित उत्पादन के परिमाण की अपेक्षा, निर्धारित समय के अन्दर ही, दुगुना तिगुना उत्पादन सम्पन्न कर लिया करता था। सोवियत यूनियन का वह

हीरो बन गया था और उसी के नाम से सारे देश मे 'स्ताखनोवाइट आंदोलन' चल निकला था। काश, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश मे भी कोई स्ताखनाव पैदा हो जाता तो देश का चेहरा ही बदल गया होता।

इसी वर्ष मैंने बी० ए० पास किया। एम० ए० म प्रवेश लेना था। जुलाई मे कॉलिज खुला तो पहले दिन पप्पू और लाखन सिंह के साथ यू ही भटकते हुए कॉलिज-लायब्रेरी मे जा घुसा। प्रवेश पत्र भरना बाकी था अभी क्योकि फीस का पूरा सा जुगाड नही हो पाया था। वैसे यह निश्चित ही था कि मैं हिंदी मे एम० ए० करूगा। बचपन म ही हिंदी साहित्य से मेरा प्रथम प्यार रहा था।

कॉलिज लायब्रेरी म कुछ समय बिता हम बाहर निकल ही रहे थे कि प्रोफेसर तालुकदार की निगाह हम पर पड गई। प्रोफेसर जीवन चन्द्र तालुकदार इतिहास के विभागाध्यक्ष थे। सुप्रसिद्ध सगीतकार श्रीमती दीपाली नाग इ ही की पुत्री हैं। तालुकदार साहब बीसियो वर्षों से आगरा मे रहते चले आये थे। उनकी एक अपनी ही शान थी, रोब था और थी हिंदी बोलने की अपनी ही निराली अदा। यू० पी० के प्रवासी बगालियो मे शायद वे अकेले थे जिन्होंने हिंदी सीख कर नहीं दी और फिर भी विद्यार्थियो से बातें करते समय यथासभव हिंदी का ही प्रयोग किया। मुझ पर असीम कृपा थी उनकी। प्राय कहते, 'मोनमोहोन बाबू, तुमि तो हमारा लेडका का माफिक।'

उस दिन तालुकदार साहब करीब आधे घण्टे तक मुझे समझाते रहे कि मुझे हिंदी म नही, हिस्ट्री मे एम० ए० करना चाहिए। अनेक आश्वासन दिए, अनेक तर्क रख। पप्पू और लाखन साथ ही बैठे सुन रहे थे। बाहर निकले तब तक मुझ से ज्यादा 'ब्रेन वॉशिंग' हो गया था पप्पू का। बाबू के रेस्तरा मे बैठकर करीब एक डेढ़ घंटे तक वह भी मुझे समझाता रहा कि जब तालुकदार साहब इतने स्नेह से, इतना जोर देकर, इतिहास मे एम० ए० करने का आग्रह कर रहे हैं तो मुझे उनकी बात मान ही लेनी चाहिए।

नतीजा यह हुआ कि मेरे अदृष्ट भविष्य की धारा ही बदल गई।

आज तक, हिन्दी में एम० ए० कर पी एच० डी० ज्ञान की साध बाकी ही रह गई है मेरी।

अब तक 1942 का आन्दोलन करीब करीब समाप्त हो चुका था। कांग्रेस तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता या तो जेल में थे या भूमिगत हो चुके थे। एक विचित्र सी जड़ता व्याप्त थी समूचे देश में। कम्यूनिस्ट पार्टी कानूनी करार दे दी गयी थी। हम लोग हमारे साप्ताहिक मुख पत्र 'लोक युद्ध' के विभिन्न भाषायी संस्करणों की बिक्री करने नगर में टोली बनाकर घूमते थे। हॉकरों की तरह चिल्ला चिल्ला कर बेचा करते थे अपनी पत्रिकायें और नुक्कड़-नुक्कड़ पर पथ सभायें जुड़ा कर भाषण दिया करते नारे लगाया करते।

पप्पू को यह काम कभी पसंद नहीं आया। उसका आभिजात्य उसे हॉकरों की तरह सड़क पर चीखने चिल्लाने की कभी इजाजत नहीं दे पाया। एकाध बार हिम्मत भी की तो वक्त से पहिले ही खिसक गया। नुक्कड़ सभाओं में भाषण देने का तो कभी प्रश्न ही नहीं उठता था। सार्वजनिक मंच से भाषण देने के ख्याल से ही उसकी नानी मरती थी। इसी चक्कर में बाद में भी, अनेक आमंत्रण निमंत्रणों के बावजूद, और अत्यन्त सुरीला कण्ठ होते हुए भी, वह कवि-सम्मेलनों में शरीक नहीं होता था। मात्र एक बार शिकोहाबाद गया था किसी कवि सम्मेलन में कविता पढ़ने। किन्तु उसके बाद ही उसने जो तौबा की वह मेरी जानकारी में तो कभी नहीं टूटी।

तथापि, इस वर्ष के दौरान वह कम्यूनिस्ट पार्टी के काफी निकट आ गया था। प्रगतिशील लेखक संघ की बैठकों में वह बिला नागा शरीक होता था। इसी वर्ष डाक्टर राम बिलास शर्मा आगरा आ गये, बलवन्त राजपूत कालेज में अंग्रेजी विभागाध्यक्ष होकर। यू० पी० के प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री का आगरावासी बनते देखकर हम सब सचमुच बहुत प्रसन्न हुए थे। अपनी अगली गोष्ठी में उन्हें निमंत्रित करने, मुझे खूब याद है पप्पू और मैं ही गये थे।

डाक्टर साहब कम्यूनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। उनके आ जाने से प्रो० प्रकाश चन्द्र गुप्त का अभाव पूरा हो जाएगा, यह विचार बड़ा

सुखद लगा था। महाप्राण निराला और अमृतलालजी नागर के परम मित्र, 'अगिया वैताल' के नाम से करारी व्यंग्य कविताओं के प्रणेता गम्भीर आलोचक एवं विद्वान के रूप में डॉक्टर साहब की ख्याति उनसे बहुत पहले ही आगरा आ पहुंची थी।

परन्तु दुर्भाग्यवश पहले दिन ही मक्खी छींक गई। नागरी प्रचारिणी सभा के प्रांगण में पेड़ के नीचे कुर्सियां बिछा कर बैठक होने वाली थी। करीब बारह-पन्द्रह लोग आये थे। अधिकांश कम्यूनिस्ट के छात्र कार्यकर्ता। बिशन खन्ना एक रूसी गुरिल्ला की कहानी का अनुवाद कर लाया था। बंगाली भी था वहां। पद्म कुमार जैन का सबसे छोटा भाई। डॉ० बंगाली कुमार जैन हिन्दी और भारतीय संस्कृति का गौरव विगत पन्द्रह-बीस वर्षों से पेरिस विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक विभाग से सम्बद्ध हो बढ़ा रहा है। तब वह इंटरमीडियेट का छात्र था। पढ़ाई लिखाई में तेज। पुस्तकें चाटने के पदम की प्रतिमूर्ति। तब तक लिखना शुरू नहीं किया था। किन्तु आगरा प्र० ले० स० में प्रारम्भ से ही सम्भावित लेखकों कवियों का अपनी गोष्ठियों में स्वागत किया था। इसी नीति के चलते बिना कुछ लिखे मैं भी प्रथम बैठक से ही वहां बुलाया जाता था।

उस दिन डॉक्टर राम विलास शर्मा कुछ देर से पहुंचे। हम सब उनकी उत्सुक प्रतीक्षा कर रहे थे। वे आये तो सबने खड़े होकर उनका स्वागत किया। बैठक शुरू हो गयी। किन्तु आज डॉक्टर साहब ने उसका ढांचा ही बदल दिया। अब तक इन गोष्ठियों का वातावरण बहुत अनौपचारिक खुला खुला सा रहता था। आज, कुछ देर बाद ही, हमें लगने लगा मानो हम क्लास रूम में बैठे हैं।

डॉक्टर साहब ने अपने निकट बैठे बिशन खन्ना को अपनी रचना पढ़ने का आदेश दिया। बिशन पढ़ गया। "इस रचना के बारे में आपकी क्या राय है?" बिशन के पास बैठे व्यक्ति से उन्होंने पूछा और फिर, एक-एक कर, दायरे में बैठे हरेक से यही प्रश्न दुहराया। अन्त में अपनी राय दे दी और फिर— 'नक्स्ट'

वाकई बहुत बोर किया था डॉक्टर साहब ने उस दिन। पहला दिन था, सो पप्पू सह गया। लेकिन यह गाड़ी ज्यादा खिंचती लगी नहीं। बुरा

मुझे भी लगा था। मैं पार्टी आफिस गया तो मैंने अपनी भावनाओं का स्पष्ट प्रकट कर दिया। शायद कुछ अधिक ही मुखर हो गया था मेरा आक्रोश। किन्तु तब तक पार्टी मे 'क्रान्तिकारी भ्रातृत्व' की भावना खूब काम करती थी। अदने स अदना पार्टी सदस्य किसी भी अन्य सदस्य की आलोचना बडे छोटे के भेद भाव के बिना स्पष्ट व्यक्त कर दिया करता था और फिर जो भी सामूहिक निणय होता उसका ईमानदारी स पालन करता था।

पप्पू तो पार्टी सदस्य था नही। वह क्यों लिहाज करता? उसने अपनी मण्डली म और भी कडे शब्दो मे डाक्टर साहब के तौर तरीके की बखिया उधेडी। यदि उसी समय डाक्टर साहब और पप्पू परस्पर बातें कर लेते तो शायद कटुता की नौबत ही न आती। परन्तु वह नहीं हुआ।

हुआ यह कि कुछ ही दिनो मे प्रगतिशील लेखक सघ मे आगरा के कुछ पार्टी कार्यकर्ता ही रह गये। गैर कम्यूनिस्ट लेखकों ने गोष्ठियों मे आना धीरे धीरे कम कर दिया। फिर भी पप्पू बराबर जाता रहा। वह न तो गैर कम्यूनिस्ट था न कम्यूनिस्ट पार्टी का विरोधी।

इसी वष महापण्डित राहुल साकृत्यायन आये थे। प्राय आगरा आते रहते थे राहुलजी। जब व आय समाज मे काम करत थे तब, अनेक वर्षों पहले, काफी समय के लिए आगरा मे रह चुके थे। राहुलजी जब जब आते, हमारे लिए वह एक महत्त्वपूण घटना होती थी। हम छात्र तो राहुलजी और यशपाल के लिखे को पढकर ही साम्यवादी विचारों के निकट आते थे।

इस बार नागरी प्रचारिणी सभा म उनका भाषण आयोजित किया गया था। इस भाषण मे अपने रूस प्रवास की चर्चा करते हुए उन्होंने वहाँ के जन-सामान्य की दैनदिन दिनचर्या पर विशद प्रकाश डाला था।

दूसरे दिन सायकाल पप्पू और मैं श्रीकृष्णा स्वामी एव रामानन्द शास्त्री के घर गये। राहुलजी वही रुके थे। कस दरवाजे के पास गोकुलपुरा में। डॉ० पदम सिंह शर्मा 'कमलेश' भी पास ही म रहते थे। राहुलजी जैसे महान व्यक्तित्व को निकट से देखने का यह मेरा पहला अवसर था। बडा उत्साह अनुभव हो रहा था।

उन्हीं दिनो राहुलजी की समाज विज्ञान सबधी एक पुस्तक प्रकाशित

हुई थी जिसे समर्पित किया था उनकी रूसी पत्नी को। फोटो के नीचे लिखा था, 'मर्मक पुत्रा वरटा तपस्विनी'। वह लेनिनग्राद मे रहती थी। अनेक महीनो से राहुलजी को उसका कोई समाचार नही मिला था। न नन्हे पुत्र इगोर राहुलोविच का। लेनिनग्राद पर नाजी फौजें कब से घेरा डाले हुए थीं। नित्य बीसियो बार उनके बमवर्षक वायुयान सैकड़ो हजारो टन के बम गिराकर लेनिन के इस नगर को धूलधूसरित करने की कुचेष्टा मे लगे रहते थे।

लेनिनग्राद वासियो को राशन पानी मिलना प्राय समाप्त हो गया था। उत्तरी ध्रुव की सीमा रेखा के निकट अवस्थित लेनिनग्राद को रूस के नैपोलियन विजयी भयंकर शीत से बचने के लिए न बिजली मिल पा रही थी, न लकडी कोयला। फिर भी वहा का बच्चा बच्चा जूझे जा रहा था, धन-जन की प्रचुर हानि की परवाह किये बिना। राहुल पत्नी भी उन्ही लाखों वीर नागरिको मे एक थी।

इतनी दुश्चिन्ताओ मे घिरे थे राहुलजी उन दिनो। तथापि उनकी मुस्कान ने उस भयंकर आपत्तिकाल मे भी उनका साथ नही छोडा था। मेरी दृष्टि मे उनकी वह भुवन मोहिनी मुस्कान उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख आकर्षण था। क्या नही मिला था राहुलजी को—दीर्घ काया, सुपुष्ट देह, वृषभ-स्कंध, प्राय आजानुबाहु। फिर भी उनकी सहज, सरल, सतत मुस्कान इन सब पर भारी पडती थी।

उस शाम प्राय एक घण्टे तक हम उनके साथ थे। राहुलजी की 'वोल्गा से गंगा' के प्रकाशन के कुछ ही समय पश्चात प्रकाशित हुई थी डा० भगवत शरण उपाध्याय की 'सवेरा'। अनेक अशो मे दानो की विषय-वस्तु एक सी ही थी। 'हस' मे खासा विवाद चल निकला था कि कौन अधिक इतिहासनिष्ठ हैं— राहुलजी अथवा डॉ० भगवत शरण?

इस सबध मे जब मैंने राहुलजी का मत जानना चाहा तो उन्होने केवल इतना ही कहा था, " 'वोल्गा से गंगा' मैंने अपने ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर लिखी है, और 'सवेरा' भगवत शरणजी ने अपने। अब यह तो पाठक ही तय करेगा कि कौन अधिक सही है। मैं भला क्या कह सकता हू?" उस दिन समझ मे आया था कि महान व्यक्ति का सर्वप्रधान लक्षण

उसका विनय होता है। जिस डाल पर फल जितने ही अधिक लगे होते हैं, वह उतनी ही झुकी होती है, धरती के पास होती है।

श्री कृष्णा स्वामी ने राहुलजी से पप्पू का परिचय तमिल भाषी के रूप में करवाया था। बीच बीच में पप्पू और स्वामीजी तमिल में बात भी कर लेते थे। अतएव राहुलजी ने पास रखी एक तमिल पत्रिका पप्पू की ओर बढ़ाकर उसमें छपे एक लेख को पढ़ जाने की सिफारिश की। उस समय तक मेरा भी यही ख्याल था कि अम्मा और अत्ते से धाराप्रवाह तमिल बोलने वाले पप्पू को तमिल लिखना-पढ़ना भी आता ही होगा। परन्तु पप्पू ने उस दिन बड़ा लज्जित होते स्वीकार किया था कि वह तमिल केवल बोल ही सकता है। और तब राहुलजी खिलखिलाकर हँस पड़े थे। बोले, 'पप्पू, तब तो तुमसे अच्छा 'मद्रासी' मैं हूँ। मैं तो तमिल लिख बोल पढ़ लेता हूँ।'

इसके बाद भविष्य में राहुलजी के साथ और भी अनेक अवसरों पर बातें करने का सौभाग्य मुझे मिला। जब जब भी मिला प्रत्येक बार मेरे सम्मुख उनके बहुमुखी, बहुरंगी व्यक्तित्व का एक-न-एक रूप उजागर हुआ। कितने सरल मन थे वे, कितने सहज। विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम् के मूर्तिमान उदाहरण।

सन् 1944 पप्पू के लिए अनेक अर्थों में काफी महत्त्वपूर्ण रहा। इस वर्ष उसने एम॰ ए॰ पास कर लिया। प्रश्न उठा, अब आगे क्या किया जाए। उस समय आगरा कॉलेज में ही अध्यापकी मिल रही थी। हिन्दी विभागाध्यक्ष, प्रो॰ हरिहरनाथ टंडन, ने इसके लिए कई बार आग्रह भी किया। परन्तु नौकरी उसके मन का राग नहीं था और उसका अहसास उन्हें भी अच्छी तरह था। अतएव उसने टंडन साहब से बड़ी नरमाई से यह कहकर टाल दिया कि वह पी-एच॰ डी॰ करना चाहता है किन्तु फिलहाल उसके बड़े भाई साहब ने उसे लखनऊ बुलाया है।

कुछ दिन वह लखनऊ जाकर रहा भी। भाई साहब [illegible] नृसिंह आचार्य, उस वक्त [illegible] अफसर थे। बंगला, मोटर, नौकर-चाकर [illegible] सभी ठाठ-बाट [illegible] शान-शौकत। सबसे छोटे भाई के लिए [illegible] स्नेह—उनका भी और पत्नी भाभी का भी। फिर कुछ [illegible]

च्या वहां। भाई साहब ने आग्रह किया भी था कि वह लखनऊ रहकर ही रिसर्च कर ले।

आगरा के रहने वालों के लिए वाजिद अलीशाह और आसफुद्दौला का नवाबी नगर, लखनऊ, उन दिनों पेरिस की हैसियत रखता था। कहां लोहा मण्डी, राजा मण्डी, रावतपाड़ा नमक की मण्डी और कहां कैसर बाग़, चौक-नख्खास और हजरतगंज। कोई तुलना ही नहीं थी। नाम के वास्ते यू० पी० की राजधानी इलाहाबाद भले ही हो, असल राजधानी तो लखनऊ ही थी, जहां गवर्नर रहा करता था और जहां प्रांतीय धारा सभा की बैठकें हुआ करती थीं।

शिक्षा के क्षेत्र में भी लखनऊ विश्वविद्यालय की गिनती इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के बाद ही होती थी। आगरा यूनिवर्सिटी बेचारी तो उसके आगे कहीं टिकती ही नहीं थी। डॉ० निमल कुमार सिद्धान्त और प्रो० धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान उसमें सम्बन्धित थे उन दिनों।

पप्पू जब आगरा से चला तो मानकर ही चला था कि अब वह दो वर्ष लखनऊ में ही बितायेगा। पर पप्पू का मन वहां लगा ही नहीं। आगरा के रहने वालों को यों भी और कोई नगर पसंद आता भी नहीं है। मजबूरी की बात अलहदा है। अतएव मुश्किल से दो महीने बीते होंगे कि जहाज के पंछी की भांति, भाई-भाभी को निराश कर पप्पू मियां वापस आ पहुंचे अम्मा अतगा[1]-अवका[2] के पास, अपने यारों के पास।

एक कविता लिखी थी उसने इस लखनऊ प्रवास के दौरान, जिस पर वह स्वयं मुग्ध था। पहली पंक्ति थी—

'ऐ जवानी नाज़ कर जो मिल कभी पाया न प्यार'

इस कविता में उसने 'गजिम' को निकली अभिसारिका-सी आधुनिकाओं के संबंध में जो लिखा था, वह कुछ इस प्रकार था—

"ये जो कूल्हों को नचाती
जा रही बिफरी हुई

1 मौसी
2. बुआ

कल का डर दिल मे समाया
हाय सी बिखरी हुइ ।"

आज बयालीस वष पश्चात मात्र स्मृति के सहारे लिखी गयी इन पक्तियां मे एकाध श द इधर उधर हो गया हो तो क्षमा चाहूगा।

आगरा लौटकर कई दिनो तक वह लखनऊ विश्वविद्यालय की छात्राओ के उ मुक्त उच्छृ खल व्यवहार की चर्चा करता रहा था। उसका ऐसा करना स्वाभाविक भी था। हमारे आगरे मे तो तब तक औरतें चादर लपेट कर ही सडक पर निकलती थी और कालेज की लडकिया बहुत हुआ, तो दो चोटियो को सामने झुला लिया करती थी। हमारे कालेज की ईसाई लडकिया तक, सडक पर न चहक सकती थी, न खिलखिला कर हस सकती थी, यद्यपि वे टोली बनाकर हास्टल स बाहर आती थी, प्राय शाम को घूमने फिरने।

लखनऊ स लौटकर पप्पू न वहा की लडकिया के बारे मे ठीक उसी प्रकार विस्तार से चर्चा करनी शुरू कर दी जैस कोई कस्बे देहात का लडका शहर से लौटकर अपने साथियो से नगर क अजूबा की बातें करे। इस क्षेत्र म उसका दृष्टिकोण और उसकी मानसिकता ठेठ निम्न मध्यमवर्गिया वाली थी।

हमन पप्पू को इतना रस लेकर लडकियो की चर्चा करत पहली बार ही सुना था। बडा अच्छा लगा था उसका जवान हो जाना। मैंन अम्मा स बार बार कहना शुरू कर दिया कि अब इसकी शादी कर ही दो। अम्मा तो अपने 'पापू' की बहू लान के लिए, ससार की हर अम्मा की तरह, आतुर ही बैठी थी। सिफ पप्पू के राजी हो जाने भर की देर थी। और पप्पू था कि राजी होने का नाम नहीं ले रहा था।

एक दिन मैं पप्पू के घर गया तो उस बठक मे किसी लडकी से बातें करत पाया। बैठक म सिफ व दो ही थे। मैं चौक क पार उसके कमरे मे जा बैठा। कुछ ही देर हुइ थी कि पप्पू चौक मे आ गया और धीम स बोला, "मनमोहन इधर आ।" मैं बाहर निकला तो उसने कान मे फुसफुसाया, "तू कहता रहता है न कि ब्याह कर ल। तो दख ल, साल, एक एसी ही डाइनासोर मरे भी पल्ले पड़ जायेगी।' अभी पप्पू की शादी म पूरे

बारह वर्ष याद्री थे।

जुलाई में कॉलेज खुला और तभी मेरी विमाता का देहान्त हो गया। गर्मी की छुट्टियों में मैं उन्हें उनके मके, झालावाड़ (राजस्थान) में पहुंचा कर आया था ताकि वे अनीमिया रोग से मुक्ति पा लें। चार दिन पहिले ही आगरा आया था कि पिताजी ने तार द्वारा उनकी मृत्यु की सूचना दी। झालावाड़ के डाक्टर ने इंजक्शन लगाते समय सुई को ठीक से 'स्टरलाइज' नहीं किया। टिटनस (धनुषटंकार) हो गया और दस बारह घंटे में ही उनका देहान्त हो गया।

मेरी विमाता जिन्हें मैं काकी कहता था, उस विमाता का प्रतिनाम थीं जिसका चित्रण युग युगों से साहित्य में होता रहा है अथवा जिसे फिल्मों में दर्शाया जाता है। ऐसी विमाता तो हर किसी को मिले। ममता और स्नेह का असीम भंडार। मुझे तो कभी यह महसूस ही नहीं हुआ कि वे मेरी अपनी मां नहीं थीं।

पिताजी की आज्ञानुसार उनका श्राद्ध कर्म मुझे करना पड़ा था। काकी से उत्पन्न मेरा छोटा भाई तब बहुत छोटा था। आगरा में सम्पन्न होना था दसवें, ग्यारहवें और बारहवें दिन का श्राद्ध कर्म। सिर मुंडवाये मैं यमुना किनारे बैठा ब्राह्मण देवता के आदेशों पर यज्ञोपवीत को दायें-बायें कन्धों पर बदलता रहा था तीन दिन तक।

इसी बीच, शायद ग्यारहवें दिन, पप्पू के साथ दो-तीन मित्र यमुना तट पर आ पहुंचे। हमारी मित्र मण्डली ने कॉलिज यूनियन के अध्यक्ष पद के लिए मेरा नाम प्रस्तावित करने का निर्णय लिया था। मेरे दस्तखत लेने आये थे प्रस्ताव पत्र पर। किन्तु मैंने तो तब तक कॉलेज की फीस तक नहीं भरी थी। 'चिन्ता मत करो। हम सब संभाल लेंगे। तुम्हें केनवेसिंग नहीं करना पड़ेगा।'

मुझे पता नहीं कि फीस किसने भरी, कन्वेसिंग किसने किसने किया, कैसे किया। निश्चय ही उस्ताद लाखन सिंह ने इसमें बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की होगी, क्योंकि मेरी विजय का आधार बड़ी संख्या में मिली ईसाई वोट थी। उस युग में कॉलेज यूनियन के चुनाव धर्म के आधार पर होते थे। हिन्दू छात्र अपने प्रतिनिधि चुनते थे, मुसलमान और ईसाई अपने-

अपने। 50 प्रतिशत हिन्दू प्रतिनिधि और 25-25 प्रतिशत बाकी दोनों। आज यह स्थिति विचित्र लग सकती है, किन्तु तब राज्य था अंग्रेजों का जिनके साम्राज्य की नींव ही डाली गई थी 'फूट डालो और राज्य करो' के सिद्धान्त पर।

वहरहाल, दोस्तों ने मुझे कॉलेज का सबसे बड़ा पद दिलवा दिया और मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा। पैसा एक खर्च नहीं हुआ और किसी से मुझे वोट की भीख नहीं मांगनी पड़ी। यह थी हमारी 'बाबू के रेस्तरां' की टोली —एक सबके लिए, सब एक के लिए।

इस साल एक नया अड्डा खुल गया हम लोगों का—विशप फ्रेंच हॉस्टल में मेरे सहपाठी, जयराम भारद्वाज, का कमरा। जयराम बी० ए० में मेरे साथ पढ़ रहा था, पर दोस्ती हाल हाल में ही हुई थी। लम्बा तड़ंगा, सबसे कटा कटा। कंधे तक झूलते सुमित्रानंदन पंत स्टाइल के बाल। आवाज छोरियों सरीखी पतली। शिकोहाबाद के एक खास धनी वकील का बेटा जयराम भारद्वाज आज तो खुद ही आगरा का अच्छी खासी प्रक्टिस और आमदनी वाला वकील बन गया है।

भारद्वाज से मित्रता का आधार था उसका साहित्य प्रेम। कविता लिखा करता था और एक-आध बार उसकी कविताएं कॉलेज की मैगजीन में छपी भी थीं। फिलासफी (दर्शन शास्त्र) में एम० ए० कर रहा था वह। कॉलेज के प्रिंसीपल, कैनन सेले का वह प्रिय छात्र था। सेले साहब स्वयं दर्शन विभाग के अध्यक्ष थे।

सचमुच बड़ा ही विचित्र था जयराम भारद्वाज उन दिनों। आज तो वह सभ्य नागरिक हो गया है। तब के भारद्वाज से एकदम विपरीत, जिसके कमरे में पुस्तकों के नाम पर रहती थी केवल एक मोटी डिक्शनरी और कापियों के नाम पर मात्र एक फाइल, जिसे हाथ में झुलाता झुलाता वह कक्षा में प्रवेश करता और फिर जा बैठता खिड़की से सटी सीट पर। अध्यापक क्या पढ़ा रहा है, इससे मानो उसे कुछ लेना-देना ही न हो। वह तो खिड़की से केवल बाहर ही देखता बैठा रहता।

बी०ए० की छमाही परीक्षा चल रही थी। अंग्रेजी साहित्य की। नाटक का पेपर था। पता चला, साहबजादे ने अपना ही एक नाटक लिख मारा

था उत्तर के रूप में। शीर्षक के ऊपर एक छोटी सी प्रार्थना थी परीक्षक के नाम कि यदि उन्हें नाटक पसन्द न आये तो वे केवल इतनी कृपा करें कि उसे काट-पीट कर उसकी हुलिया न बिगाड़ दें, नम्बर भले व कुछ भी न दें। उस परीक्षा में उसे मिला तो जीरो ही, किन्तु साथ ही प्रो० शर्मा की भरपूर आन्तरिक प्रशंसा भी मिली थी उसे।

इसी प्रकार इतिहास के हमारे विभागाध्यक्ष, तालुकेदार साहब ने हमें इस्टर्न क्वेश्चन पर एक निबन्ध लिखने को दिया तो हजरत ने एक कविता लिख डाली थी जिसकी प्रथम पंक्ति मुझे आज भी याद है

"हिस्ट्री इज द् फार्स ऑफ ह्यूमन इग्नोरेंस"

(इतिहास मानवीय अज्ञान का हास्यास्पद नाटक मात्र है)

कॉलेज में ऐसी विचित्र प्रतिभा का धनी कब तक हमारी मण्डली से अलग रह सकता था? खास कर जब कि चाय और सिगरेट उसके एकमात्र पेय हों। कब और कैसे वह बाबू के रेस्तरां में आने लगा, आज याद नहीं। इतना जरूर अच्छी तरह याद है कि हमारी समूची टोली बहुत शीघ्र ही उसके हॉस्टल के कमरे में जा बैठने लगी।

कमरे में थी एक खाट एक कुर्सी, एक मेज, एक हुक्का और एक शतरंज का सेट। खाट सबके बैठने के काम आती, हुक्का कश लगाने के काम और शतरंज की बाजी जमाने वाले भी एक दो निकल ही आते। एक प्राइमस स्टोव भी था वहां, जिस पर जब जी में आया हम चाय बना लिया करते थे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पदार्थ हमें सहज ही उपलब्ध हो गये थे जयराम के कमरे में। अब हमारे दिन बीतने लगे वहां, और शामें बाबू के रेस्तरां पर।

जयराम और पप्पू में अक्सर ठन जाया करती थी। दोनों का ख्याल था कि वे हिन्दी के विद्वान हैं। संस्कृत में भी दोनों को अपने अपने ज्ञान पर यथेष्ट आस्था थी। गड़बड़ हो जाती थी अंग्रेजी में। उन दिनों हम सब में पप्पू की अंग्रेजी अपेक्षाकृत कमजोर थी। यों लोग आज जैसी अंग्रेजी लिख बोलकर रौब जमा लेते हैं उनकी अपेक्षा पप्पू को अधिक अच्छी अंग्रेजी आती थी। पर जब वह यारों में टर्राने लगता तो मार खानी पड़ जाती थी उसे। जयराम का पलड़ा निश्चित रूप से

क्षेत्र म भारी पड जाता था। और इसी बात को लेकर एक-दूसरे की टाग खिचाई चलती रहती थी।

पहले भी कह चुका हू और फिर दुहरा रहा हू, कि पप्पू का अहम बहुत जाग्रत था अत्य त सवेदनशील था। टोली के दूसर मित्र भी अपने अपने क्षेत्र म महान थे। कोई स्वय को किसी दूसर से रत्ती भर कम मानने को तैयार नही था।

यही एक भ्रमपूण धारणा का निराकरण कर देना चाहूगा। रागेय राघव की रचना ससार' नामक एक बेहद सु दर तथा उपादेय पुस्तक मे पहल पहल पढा और बाद मे ऊपर जिस शोध ग्रथ की चर्चा की है उसम भी पुन देखा कि बाबू क रेस्तरा और राजामण्डी क होटलो के बिलो का भुगतान पप्पू की जेब स ही होना रहता था। यह कतई गलत बात है। हमारी मित्र-मण्डली म परापजीवी की गुजायश ही नही थी। और, न पप्पू इतने रईस खानदान का बेटा ही था कि आठ दस मित्रो के चाय सिगरट, नाश्ते पानी का बिल वर्षो तक अपनी जेब स भरता रहे।

सचाई तो यह है कि हम सबम 'पैस वाला' अगर कोई था तो वह जयराम भारद्वाज था। सन 1943 44 मे उसके पिता उसको हर महीने सौ रुपये भेजते थे। कॉलेज क अध्यापक को यदि प्रारम्भ मे सौ रुपय की नोकरी मिल जाती थी तो वह सौभाग्यशाली गिना जाता था। पद्रह-बीस रुपये मासिक हाथखच मिल जाय तो बडे ठाठ स चाय सिगरेट पीते सिनेमा देखते, महीना बिताया जा सकता था। हास्टल मे महीने भर का खाने का खर्च आठ दस रुपए आया करता था। इसमे प्रत्येक रविवार तथा त्योहार के दिन खीर पूडा तथा अ य पकवानो का खच भी शामिल होता था।

अतएव पप्पू को अपनी जब से सबका बिल चुकाने की कोई जरूरत कभी नही पडती थी। हा, उसकी बैठक म रखी मेज क विभि न दराजो म वह बीडी के बण्डल और पासिंग शो, डीलक्स टेर, कैवेंडर आदि विभिन्न किस्म की सिगरेटो के पैकेट रखता था। सु दर सिह भागे तो उस बीडी थमाता, बसल को पासिग शो जयराम का कवे डर और मुझे डीलक्स। कहता, "टू इच अकोडिंग टू हिज नीड्स।"

1944 म हमारी मण्डली म एक और इजाफा हुआ। सूरज नारायण

मुशी का। मुझसे भी ज्याग नाटा और दुबला। एम० एन० राय की रडि कल डमोक्रटिक पार्टी का आगरा सगठक। कानपुर लखनऊ के आस पास का। जबान मे पूर्वी लहजा इतना स्पष्ट था कि हम सब मजाक म, उसके आते ही बोल उठते, "लो भई आ गया कान ही पूर वाला।"

एम० एन० रॉय उन दिनों बदनाम हो गये थे। भारत सरकार सेण्ट्रल एसम्बली मे स्वीकार करने को बाध्य हो गई थी कि 'वार-एफट स' म सहायता देने की शत पर उनकी पार्टी को वह तरह हजार रुपय प्रति मास का अनुदान दे रही है। आज यह रकम बडी सामा य जान पडेगी। पर तु उस जमाने म अच्छी खासी मानी जाती थी।

यह पहला अवसर था जब किसी भारतीय राजनैतिक दल न सरकारी आर्थिक सहायता स्वीकार की थी। बदनामी तो होनी ही थी। यो कम्यू निस्ट पार्टी भी द्वितीय महायुद्ध को लोक युद्ध घोषित कर चुकी थी। कि तु इस खातिर अग्रेज शासको से धन ले अथवा अ य किसी प्रकार की सहायता स्वीकार कर, यह उसके लिए असभव था। यो कम्यूनिस्ट विरोधी तो आज तक कम्यूनिस्ट विरोधी पार्टी को 'बयालीस आ दोलन' का विरोध करने के अपराध म गद्दारो की पार्टी कह बठते हैं।

उन दिनो रायिस्टों और कम्यूनिस्टो मे गहरा पारस्परिक विरोध था एक दूसर का दख नही सकते थे। फिर भी जो मुशी हमारी टोली का अ तरग सदस्य बन गया, उसका कारण था उसकी बौद्धिक सचेतनता, मजाक पसदी और आलोचना पर बौखला न उठने की अद्भुत क्षमता। हम उसके राजनैतिक मतवाद से परिचित थे और वह हमारे। अतएव, हम यथासभव उसस राजनतिक बहस मे नही उलझत थ।

कि तु यदि कभी मुशी अपनी रॉयवादी बातें करने ही लग जाता तो क्या पप्पू और क्या दूसरे मित्र, फौरन उसे चुप हो जाने पर बाध्य कर देत थे। मेरे अतिरिक्त और कोई मित्र कम्यूनिस्ट नही था, कि तु कम्यूनिस्ट पार्टी विरोधी भी उनम एक भी नही था। इतनी राजनैतिक समझ और सूझबूझ उनम थी कि 'सरकारी' और 'गैर सरकारी' कम्यूनिस्टो म फक कर सकें।

मुशी के साथ दोस्ती के प्रश्न पर मुझसे भी पार्टी मे जवाब तलब किया

गया था। कुछ साथियो ने आक्षेप भी लगाये थे। मैंने, अपनी निगाह मे, कोई गुनाह नही किया था। मनुष्य अच्छा हो तो उससे दोस्ती क्यो न की जाय? हा, राजनीति के क्षेत्र मे कतई कोई समझौता नही होना चाहिए, यह मैं तब भी मानता था आज भी मानता हू। लेकिन मुझसे भिन्न राजनैतिक मत म विश्वास करने वालो को मैंने अछूत कभी नही समझा। छूत-छात कमजोरी की निशानी होती है। ब्राह्मणो को डर लगा तो फतवा दे दिया, 'न गच्छेत् जैन मदिरम"।

मैंने पप्पू की गवाही दिलवा कर यह सिद्ध कर दिया कि हमने मुशी की राजनीति का सदैव तीव्र विरोध किया है। यो, पार्टी के कट्टर विरोधी मेरे बडे मामाजी भी थे जिन्होने मुझे पाला पोसा था। तो क्या मैं उनसे भी सम्बध विच्छेद कर लेता? डाक्टर अशरफ ने मेरे इस तर्क का समथन किया और इस प्रकार मुशी के साथ हमारी दोस्ती पर कोई आच नही आयी।

इसी वप श्री पद्मसिह शर्मा 'कमलेश' भी हमारे बहुत निकट आ गये। कमलेशजी कमाल के आदमी थे। बडी गरीबी मे पल कर बडे हुए थे। आगरा के दनिक पत्रो 'सैनिक' और 'आगरा पत्र' के हाकर रहकर बचपन से कमाई करने की मजबूरी से जूझते हुए वे 'विशारद' और 'साहित्य रत्न' की परीक्षाओ म सम्मान उत्तीर्ण हुए। कविता तो अनेक वप पहले से ही किया करते थे। कण्ठ भी मधुर था। नागरी प्रचारिणी सभा मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओ के विद्यार्थियो के जन प्रिय शिक्षक थे और थे साहित्य रत्न भण्डार के स्वामी महेन्द्रजी के दाहिने हाथ।

उन दिनो वे मैट्रिक की केवल अग्रेज़ी की परीक्षा देने की तैयारी कर रहे थे। अग्रेज़ी उन्होने कभी पढ़ी नही थी, अब सीख रहे थे। बाबू के रेस्तरा मे आने लगे तो यारो ने उन्हें भी नही बख्शा। "अच्छा, कमलेश, बताओ तो, मैं जाता तो हू की अग्रेज़ी क्या होगी?' और कमलेशजी बडी निरीहता स उत्तर देते "आइ हू गो।' इसी बीच कोई पूछ बठता, 'द ब्लैक कैट सैट आन द रैड मैट की हिन्दी बोलो।" कमलेशजी उसका भी उत्तर उतनी ही सादगी स देने लग जाते। वास्तव मे कमलेशजी जैसा भला और सरल व्यक्तित्व मैंने नहीं देखा।

अपने ही अध्यवसाय और लगन के बूते पर कमलेशजी ने हिंदी मे एम० ए० किया पी एच० डी० की उपाधि ली, आगरा कॉलेज के हिन्दी विभाग प्रवक्ता बने और बाद कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय मे हिंदी के प्राचार्य। 'आगरा पच' का गली गली बेचने वाला बालक, और कितनी सीढिया ऊपर उठना ? तारीफ यह थी कि इन समस्त उपलब्धियो के बावजूद उन्होने अपनी जमीन नही छोडी। साक्षात्कार विधा के माध्यम से कमलेशजी ने हिन्दी साहित्य को अनेक महत्त्वपूर्ण एव स्मरणीय कृतिया प्रदान की। उन सरीखे व्यक्ति को अपना घनिष्ठ मित्र कह पाने का हमारी टोली के सभी सदस्यो को आजीवन गर्व रहेगा।

सन 1944 मे ही बछगाव मे यू० पी० किसान सम्मेलन हुआ। बछगाव फीरोजाबाद से दस बारह मील दूर एक गाव है। किसान सम्मेलन की अध्यक्षता करने वाले थे राहुलजी। पप्पू, ब्रजराज सिंह मैं और मेरे कालेज का एक बी० एस सी० का छात्र, मिश्रा, हम चारो ने सम्मेलन मे जाने का निश्चय किया। मिश्रा की परीक्षाए होने वाली थीं। अतएव उसने हमसे वायदा ले लिया कि हम दूसरे दिन लौट आयेंगे।

फीरोजाबाद पहुच कर पता चला कि बछगाव जाने के लिए बैलगाडियो पर बैठ कर जाना पडेगा। इसके पहिले हमने बैलगाडी का सफर कभी किया नही था। बडे उत्साह से जा चढे। अब जो दो मील भी मुश्किल से चले होंगे तो हमारा जी इस सवारी से एकदम ऊब गया। कितनी धीमी, कितनी उबाऊ। शरीर के अजर-पजर ढीले होने लग गये।

'मारो गोली बैलगाडी को। चलो, पैदल ही निकल चलते हैं" हमने सबने एक स्वर से निश्चय कर लिया। दोपहर बीत चुकी थी, शाम के तीन साढे तीन से सम्मेलन शुरू हो जाएगा। तेज-तेज चलने लगे हम चारो। सात आठ मील की दूरी होती ही कितनी है। "अभी पहुच जाते हैं' हम एक दूसरे को हिम्मत बधाते जा रहे थे।

शाम के साथ लम्बे होने लगे तो जरा चिन्ता बढ़ी। हर दस-पद्रह मिनिट बाद सडक पर चल रहे लोगो से पूछना शुरू किया, 'चो भैया, जे बछगाव कित्ती दूर है ?' हरेक का एक ही उत्तर था "बस अब तो पास ही हतै। जेई कोई एक कोस।" परन्तु कितना लम्बा होता है गाव वालो

था एक कोस । थकान और भूख प्यास परेशान कर रही थी। वह 'एक कोस' हमारे लिए उस दिन मृग मरीचिका सिद्ध हो रहा था ।

बछवाव पहुंचे तो साढे पांच बज चुके थे। सम्मेलन का उदघाटन, नेताओं के भाषण, यहां तक कि राहुलजी का भाषण भी समाप्त हो चुका था। डा० अशरफ ने मज़ाक बनाना शुरू किया—'यह आप लोग क्या नौ दिन चल कर आए हैं इस अढ़ाई कोस की दूरी को ? खैर शुक्र है कि आ तो पहुंचे। कान्फ्रेंस में शिरकत नहीं कर पाए, कोई हर्ज नहीं। कल्चरल सेशन शुरू होगा। पप्पू तुम भी सुनाओगे न, गीत कविता ?"

पप्पू ने तो साफ मना कर दिया था। मंच से कविता सुनाने से बेहद घबराता था वह। लेकिन उस दिन बिहार के निरक्षर जन कवि रामकेर ने जब खुले गले से गाना शुरू किया—

> ' बिदेसिया सुन रे सुन रे
> सुखी रहो चाहे रंज रहो,
> तुम अपने घरे हम अपने घरे'

तो हजारों लोगों के साथ हम भी आनन्द के मानवें आसमान पर जा पहुंचे थे।

गजब के थे ये दो जन-कवि। एक का नाम था धर्मपाल। हजारों हजार लोगों को अपनी वर्ग चेतना सिक्त कविताओं से मंत्र मुग्ध कर लेना उनके बायें हाथ का खेल था। लिखना पढना जानते नहीं थे, सो अपनी बनायी एक-एक पंक्ति को बीस तीस बार रटना पड़ता था उनको। गजब की थी उनकी स्मृति और गजब का था उनका काव्य पाठ। और इन दोनों से बढ़ कर गजब की थी उनकी राजनैतिक सूझ-समझ। बड़े बड़े सिद्धान्तों को पानी की तरह साफ सुथरी भोजपुरी में कविता में परिणत कर देते थे वे दोनों।

बछवाव सम्मेलन में ही नागार्जुनजी से हमारा परिचय हुआ था। तब बौद्ध भिक्षुत्व से छुटकारा पाकर नागार्जुन पुनः गृहस्थ बने थे। बिहार किसान सभा का नेतृत्व उन दिनों स्वामी सहजानन्द और राहुलजी के हाथों में था। सहजानन्दजी तो तब भी संन्यासी थे। राहुलजी बौद्ध धर्म त्याग कर कुछ वर्ष पूर्व कम्यूनिस्ट हुए थे। अब नागार्जुनजी भी आ

जुटे। बिहार किसान सभा को हम लोग मजाक में 'साधुओं की जमात' कहा करते थे। नागार्जुन को देखकर आज भी अन्दाज लग जाता है कि इन साधुओं की इमारत कितनी बुलन्द रही होगी।

रात के ग्यारह बजे खा पीकर निबट ही थे कि मिश्रा मचल गया—"आपने वायदा किया था कि मुझे कल सुबह आगरा वापस पहुंचा देंगे। चलिए अभी, इसी वक्त। कम्यूनिस्ट अपने वायदे से कभी नहीं मुकरते। चलिये, अभी, इसी वक्त।" पप्पू ब्रजराज सिंह मैं सभी समझा समझा कर हार गए, वह टस से मस नहीं हुआ। डॉ० अशरफ, टंडनजी सभी ने जोर लगा लिया। पर शाबास मिश्रा, तुलसी के चातक की तरह एक ही रट रही उसकी—चलिए अभी, इसी वक्त।

पप्पू उसकी जिद से इस कदर तंग आ गया कि ताव में आकर बोल उठा—'चल साले, तू भी क्या याद रखेगा कि किसी रईस से पाला पड़ा है।" और हम चारों ने, रात के बारह बजे बाक फिर से शुरू कर दिया लैफ्ट-राइट लफ्ट। इस बार अलीगढ़ के एक शायर और आ जुटे थे हमारे साथ—दूल्हे मियां। शेर ओ शायरी के इतने कद्रदां टकटठे शायद नहीं मिले थे उन्हें इससे पहले। जो कुछ याद था भाके जा रहे थे दूल्हे मियां।

वक्त अच्छा ही कट रहा था। मुश्किलें सिर्फ दो थीं—हम बेहद थक चुके थे, और कि जब भी कोई गांव आ जाता था, वहां के कुत्ते एक साथ मिलकर भौंकने लगते थे। बड़ा वफादार होता है कुत्ता, लेकिन वफादारी निभाने के जुनून में राह चलतों और चोरों में जब फर्क नहीं करता तो बड़ी कोफ्त होने लगती है।

आखिरकार हम फीरोजाबाद पहुंच ही गए और किस्मत वाले थे लिहाजा स्टेशन पर मुश्किल से पांच सात मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी होगी, गाड़ी आ गई। अलस्सुबह थी, मार्च की बयार थी और थे गाड़ी के हिचकोले। नींद ने घर दबोचा हम सबको। केवल मिश्रा जागता रहा था। उसी की वजह से हम राजा की मण्डी स्टेशन पर उतर सके वरना सोते-सात न जाने कहां जा पहुंचते।

सन 1944 की सबसे अधिक अविस्मरणीय घटना थी वह विपत्ति जो अंग्रेजी शासकों ने जान-बूझ कर हमारे राष्ट्र पर लादी थी—बंगाल का

अकाल। आज भी याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कितना भयानक समय था जब सुजला, सुफला शस्य श्यामला बंगाल के लाखों लोग दो मुट्ठी अनाज की तलाश में अपने-अपने गावों से निकल कर भाग रहे थे शहरों की ओर और सड़कों पर ही दम तोड़ रहे थे। लाशों के अम्बार लग गए थे। भूख और केवल भूख का अखण्ड साम्राज्य स्थापित कर दिया था भूमके बंगाल पर। इस कुत्सित षडयंत्र में शामिल थे अंग्रेज और उनके क्रीतदास, बंगाल के कुछ पूंजीपति जिनका सरगना था इस्फहानी।

हमारे देश की एक विशेषता रही है—मुसीबत आ पड़ने पर हम सब एक हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि मुसीबत जब तक नहीं आ पड़ती, हम आपस में लड़ते-झगड़ते ही रहते हैं।

बंगाल के इस अभूतपूर्व दुर्भिक्ष का सामना भी हमारे देश ने अभूतपूर्व एकता से किया। अविभक्त भारत के कोने कोने तक अकाल की विभीषिका को पहुचाने के लिए विनय रॉय का दल निकल पड़ा था। विनय दा और उनके साथियों द्वारा गाये गए गीतों को सुनना एक रोमांचकारी अनुभव होता था। उनकी टोली आगरा भी आई।

आगरा कॉलेज के तत्कालीन मैस्टन हाल (वर्तमान गंगाधर शास्त्री सभागार) में जब उन्होंने गाना शुरू किया—

सुनो हिन्द के रहने वालो सुनो सुनो।
आजादी का झण्डा जिसने ऊंचा रखा है
दुश्मन के मुकाबिल जिसने मैदान लिया है
आज हिन्द के रहने वाले, बंगला के इंसान
भूख से लड़कर कर रहे हैं जिन्दगी कुर्बान।

तो समूचा हाल सांस रोक कर जा बैठा वह तब तक बैठा रहा था जब तक इस अमर गीत का अन्तिम पद नहीं आ गया था, जिसमें विनय दा और उनके 'कल्चरल स्क्वाड' के साथी गा रहे थे—

आओ हिन्दू-मुस्लिम आओ
अपना जो कुछ है संग लाओ
हाथ मिलाओ आज बंगला से
चालीस करोड़ अब कदम उठाओ, सुनो-सुनो।

आगरा हिलाकर रख दिया था विनय दा और उनके साथियों ने। हॉल से निकल कर हम लोग चले गए पप्पू के साथ, उसके घर। रात साढ़े ग्यारह बजे तक बैठे विचार विमर्श के बाद तय हुआ कि शीघ्र ही कुछ ऐसा करना है जो अभी तक आगरा में न हुआ हो।

उस वर्ष मैं आगरा विद्यार्थी संघ का भी अध्यक्ष था। संघ की कार्यकारिणी समिति ने एक सांस्कृतिक आयोजन की रूपरेखा बनाई जिसमें एक एकांकी नाटक खेलने का निश्चय किया गया था। नाटक लिखा पप्पू ने और नाटक के रिहर्सल भी उसी की बैठक में होने लगे।

एक सप्ताह में नाटक तैयार हो गया। मुख्य अभिनेता था मेडिकल कालेज का एक छात्र जो हमारे विद्यार्थी संघ का उप सभापति भी था। उसकी अभिनय क्षमता पर हमें बड़ी आस्था हो चली थी क्योंकि मात्र तीन-चार दिन के रिहर्सलों में ही उसने अपने संवाद मुखस्थ कर लिये थे।

बाग मुजफ्फर खां स्थित मुरारीलाल खत्री गर्ल्स स्कूल के हॉल में उस शाम तिल धरने की जगह बाकी नहीं थी। आगरा के कलक्टर, कमिश्नर और प्रायः सभी गण्यमान्य लोग वहां उपस्थित थे। हमारे प्रोग्राम के ढेरों टिकिट बिक चुके थे। हम गदगद थे।

मंच पर किशन भाई की छोटी-छोटी बच्चियों के प्यारे प्यारे नाचों ने बड़ी प्रशंसा पाई। अब बारी आई छात्र-युवकों की। एक मेडिकल कालेज का लड़का गाने आया तो नहीं जमा। दूसरे कॉलेजों के छात्रों ने उसे हूट कर दिया। मेडिकल कालेज के छात्रों ने इसे अपना अपमान मान लिया और सामूहिक रूप से हाल से निकल गए। उनका यह वाक आउट हमारे लिए बहुत बड़ी मुसीबत साबित हो गया। हमारे नाटक का हीरो भी मेडिकल कालेज का छात्र था। उसे भी वे लोग अपने साथ ही समेट ले गए। अब हम क्या करें? बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो गई।

समस्या से मुक्ति दिलाई थी पुत्तूलाल दुबे ने। आज तो पुत्तूलाल ग्वालियर के बहुत नामी वकील बन गए हैं। उन दिनों वे पप्पू के घर में ही उसके परिवार का अंग बनकर रहते थे। हमारे रिहर्सलों में वे चुप-चाप श्रोता बन बैठ रहते थे। यों भी पुत्तूलाल बोलने में कम ही विश्वास करते थे। उन्हें जब जो करना होता, बस, कर गुजरते थे। सारा सेन्ट

जों म कॉलिज उनकी इस मूक कार्यक्षमता को अच्छी तरह जानता था। कॉलिज मे काफी नाम था उनका।

तो जब हम 'अब क्या होगा' का कोई समाधान निकालने म प्राय असमर्थ होकर फैसला करने ही वाले थे कि नाटक कैंसिल तभी बिलकुल हिन्दी फिल्मों के हीरो वाली मुद्रा म पुत्तूलाल प्रकट भये। बोले 'नाटक होगा जरूर होगा। रिहर्सल सुनते सुनते मुझे संवाद याद हो गये हैं। कुछ तुम लोग पीछे से प्रॉम्प्ट कर देना। काम चल जायगा।"

काम चला ही नहीं, खूब चला था। इस नाटक म जतनलाल ठाकोर, ने भूखे बगाली का पाट किया था। जतनलाल सूरत शक्ल से तब भी भूखे बगाली लगते थे, आज भी लगते हैं। पप्पू ने नाटक का अन्त करवाया था उनके एक लम्बे डायलॉग म जिसे बोलते बोलते वे मंच से नीचे उतर आते हैं अपनी झोली फैलाये लोगों म बगाल के अकाल पीड़ितों की सहायताथ मुक्त हस्त से दान देने की अपील करते हुए। जतनलाल का अभिनय इतना सजीव हुआ था, उसके सम्वाद इतने चुटीले थे कि उनकी झोली म तो रुपया और गहनों की वर्षा हुई ही, विंग से निकलकर विद्यार्थी संघ के कार्यकर्ताओं की झोलियां भी भर गयी थीं। अनेक महिलाओं ने हाथों से चूड़ियां उतार दी थी अपनी गीली आंखों के सम्मान म।

यह सांस्कृतिक आयोजन हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि थी, जिसका सारा श्रेय पप्पू के लिखे नाटक को जाता है। अपने इस एकांकी को उसने अपने 'विषाद मठ' म ज्यों का त्यों समाहित कर लिया है।

इस सफलता से प्रेरणा प्राप्त कर आगरा विद्यार्थी संघ ने एक और ऐसा निश्चय किया जो विद्यार्थी संघ की किसी भी शाखा ने अभी तक नहीं लिया था—बगाल के अकाल-पीड़ितों को राहत पहुंचाने के लिए एक मेडिकल जत्था भेजने का। हमें बड़ी प्रसन्नता हुई जब मेडिकल कॉलिज के साथियों ने अपने अनुमान की बात भुलाकर इस जत्थे म शामिल होने का निश्चय किया।

मेडिकल जत्थे का नेतृत्व कर रहे थे आगरा म आज बहुत प्रसिद्ध डॉ० रही० जी० कुर। डॉ० कुन्द्रे बड़े मुखर, कल्पनाशील, म ही रहन थे और कम्युनिस्ट थे। सन् बयालीस म इन्हें अरेस्ट भी होना पड़ा था। यानी,

चलोस बात कहते हैं और कदाचित इसीलिए आज भी सबके श्रद्धा-भाजन हैं।

इस जत्थे के साथ रिपोर्टर के रूप में पप्पू को भी भेजा गया। इस निर्णय ने हिन्दी साहित्य को दिया 'तूफानों के बीच'। तब तक हिन्दी में रिपोर्ताज प्राय नहीं लिखे गये थे। पप्पू को बंगाल के दुर्भिक्ष ने कितने निकट से प्रभावित किया था, इसका जीवन्त दस्तावेज है 'तूफानों के बीच' जिसका शब्द शब्द उस आग से भरपूर है जो उस युग के किसी भी सच्चे देशभक्त के हृदय में साम्राज्यवादी सरकार के इस इच्छा कृत कुकृत्य ने सुलगा दी थी। काश, 'तूफानों के बीच' को हमारे विद्वान आलोचकों तथा विद्वानों ने अधिक गंभीरता से लिया होता।

पप्पू जब बंगाल से लौटा था तो अपने साथ कुछ चार चार पंक्तियों की बड़ी प्यारी प्यारी कविताये लिखकर लाया था। प्राय 30-35 कवितायें थी। उदाहरणार्थ—

"अमल स्नेह से गुंजित कर दो
मेरे मन की सूनी वीणा,
फिर ऐसी चितवन जग जाये,
असमय सोयी आस मलीना।"

"आलापिनी, स्नेह में तर
कितने ही हँस हँस रो देंगे,
पर जो प्यार करे ज्वाला को
उससे भी ऐसी निष्ठुरता?"

"आज दीप इस परवाने के
जलते पंख देख हँसता है
कह दूँ, रानी खीज न जाना—
जलने वाला ही बुझता है।'

और,

"विजन मरु में साथ जिसके
यह मुसाफिर चल रहा था,
लुट गया जब कारवाँ ही
हाय! क्या पद चिह्न खोजूं।"

ज्योत्सना सिक्त रात्रि में पूर्व बंग की पद्मा तथा मेघना नदियों का स्टीमर से पार करते समय लिखी गयीं इक्कीस वर्षीय पप्पू के अंतस से निस्सृत विशुद्ध प्रेम की इन कविताओं पर उसने बड़े मनोयोग से, प्रत्येक कविता के केन्द्रीय भाव पर रंगीन चित्र बनाये। महादेवीजी की 'दीप शिखा' सरीखे।

जेबी डायरी साइज के सफेद कागजों पर बने ये चित्र और प्रत्येक चित्र के नीचे, ऊपर अथवा बीच में लिखी कवितायें, यदि बची रहतीं तो पप्पू के कवि का एक अद्भुत आयाम प्रस्तुत करतीं। पर पप्पू ने तो इन्हें किसी और उद्देश्य से लिखा था। जब सारे चित्र बन गये तो उसने अपने मझले भाई किच्चू को पकड़ा। किच्चू भाई उन दिनों अमेरिका के आगरा स्थित फौजी डिपो में काम करते थे। प्लास्टिक नया नया चला था। पप्पू ने उनके ज़रिये डायरी के कवर के लिए प्लास्टिक की दो मोटी शीट उसी साइज़ की कटवा मँगवायी। बड़ा ही नफीस कवर बन गया।

और एक दिन पप्पू ने घोषित कर दिया कि उसकी वह डायरी कहीं खो गयी। खासा नाटक किया था पहले उसे खोजने का और फिर न मिलने के अफसोस का। डायरी मिलती वहाँ से? वह तो उन्हीं देवीजी के पास पहुँच गयी थी जो नित्य पप्पू को देखने फुटपाथ बदला करती थीं। काफ लव (किशोरावस्था का प्यार) करने का अधिकार पप्पू का भी तो था ही न आखिर!

आगरा विद्यार्थी संघ ने मेडिकल मिशन के वापस आने के बाद एक 'पोस्टर प्रदर्शनी' का आयोजन किया। प्रायः तीन सप्ताह नित्य छः सात घण्टे तक तन-तोड़ मेहनत कर बंगाल के अकाल की विभीषिका को बड़े-बड़े पोस्टरों पर चित्र रूप में परिणत किया पप्पू ने, विशन खन्ना ने और अनेक उन साथियों ने जिन्हें चित्र बनाना आता था। अनेक आंकड़े, अनेक फोटो और अनेक सूत्रवाक्यों को छोटे बड़े पोस्टरों पर ढाला। प्रदर्शनी लगायी गयी सेंट जॉन्स कॉलेज में। उद्घाटन के लिए बुलाया था बलवन्त राजपूत कालेज के प्रिंसीपल डा० रामकरन सिंह को। बड़ी धूम मची थी इस पोस्टर प्रदर्शनी की भी।

बंगाल के अकाल ने हमारी मित्र मण्डली को एक और अच्छा लेखक

दिया। श्री जतनलाल ठाकोर की चर्चा ऊपर की है। नाटक मे अभिनय करने के पश्चात् उन पर कुछ ऐसा गहरा प्रभाव पडा कि उन्होने भी एक नाटक लिख डाला—प्लासी के युद्ध की पष्ठभूमि पर। जब वह नाटक पप्पू की बठक म पढा गया तो हम सभी अवाक रह गय थ। जतनलाल स यह उम्मीद कभी किसी ने नही की थी। सग ोप' का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित किया था जतनलाल ठाकोर न।

जतनलाल रिश्त म मरे मामा हाते हैं—मरी मा के खास ममर भाई। उम्र म मुझसे दस महीन छोटे ह, लिहाजा बचपन से यार ज्यादा हैं, मामा कम। साथ-साथ, एक ही मकान म पढे-बढे हैं हम दोनो। कालज मे भी वह सिफ एक क्लास पीछे थ। बाबू क रेस्तरा मे कभी-कभी आ जाते थे। सबमे साहब सलामत हो गयी थी। अब जो जतनलाल का साहित्यकार जाग बठा तो आलम यह हो गया था कि वे किसी दिन नाटक लिय चले आ रहे है तो किसी दिन कहानी। कुछ दिन बाद देखा ता कविता पर भी हाथ चलान लग गये। उस्ताद लाखन सिंह ने उस दिन कहा था, 'लो भाई, अब जतन की कितना भी सुननी पडेगी।"

श्री जतनलाल ठाकोर आज भी कविता आदि लिखत रहत हैं। उन्ही की एक बडी प्यारी कविता है—

> जिन्दगी काटे न कटती
> वक्त काटे जा रहा हू।

सचमुच अगर जिन्दगी न उन्हें जरूरत से ज्यादा धक्क न दिये होते तो जतनलाल का साहित्य म अपना एक स्थान अवश्य होता।

इसी वष पप्पू के पिताजी का दहान्त हा गया। श्रीरगाचाय, जिनक नाम पर पप्पू ने अपन को रागेय कहा था, सस्कृत और तमिल क विद्वान थे, फारसी म कविता कर लेते थ। अपेक्षाकृत कम बालत थ। नजर उनकी बडी पैनी थी, हर चीज पर रहा करती थी। अधिकतर वैर म रहत थे जहा व रामानुज सम्प्रदाय क सीतारामजी क मदिर क आचाय थे। मुझे याद है कि एक दिन सुबह जब मैं पप्पू के घर गया तो वे स्नान कर रह थ। पप्पू म पूछा कि कौन है तो उसन कहा "मनमोहन है। अरे वही, नीच नागर जाति वाला।" पिताजी ने तुरन्त प्रतिवाद किया था, "अरे, नागर

ता हम पच द्रविडो म एक हैं। य तो हमारे भाई है।' उस दिन स मैं पिताजी की इस भाई वाली बात को, जब तब याद दिला दिया करता था पप्पू को ताकि वह उस रिश्त क नात मुझे 'चाचाजी' कहा करे।

पप्पू को अपने पिता स गहरा प्यार था। प्राचीन भारत, भारतीय परम्पराओ तथा ब्राह्मणत्व क सस्कारो के प्रति उसका मोह अधिकाश उसके पिताजी स विरासत म मिला था। भविष्य म लिख जाने वाली उसकी प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास 'प्राचीन भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका, तथा भारतीय चिन्तन' सरीखी गम्भीर रचनाओ की पष्ठभूमि म पितृ दत्त सस्कारा की बडी भूमिका रही थी।

तथापि यह भी निस्सदेह है कि विद्यार्थी जीवन म वह इन सस्कारो स मुक्ति पान के लिए आप्राण चेष्टा करता रहा था। बहुधा कहा करता था "यार अक्सर दिमाग म यह सदह तो हो जाता है कि भूत प्रेत वास्तव म है कि नही हैं। परन्तु ईश्वर—उसके सबध म तो मुझे कोई भ्रम नही रह गया है कि उसका अस्तित्व केवल मनुष्य की कल्पना की ही उपज है।'

'तूफाना के बीच' क तुरन्त बाद पप्पू ने हाथ लगाया मायको सकी की कविताआ क अनुवाद पर। उस मायकाव्सकी के जीवन और मरण, दोना न बहुत प्रभावित किया था। पप्पू बडा सजग अनुवादक था। अनुवाद मरा भी प्रिय कम रहा है। प्राय बातें होती थी कि अच्छा अनुवाद किस कहा जायेगा। शाब्दिक अनुवाद को वह घटिया अनुवाद मानता था। यदि अनुवाद स्वय अपनी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना न बन सका तो बात ही क्या बनी ?

मायकोव्सकी की एक प्रसिद्ध रचना है—लफ्ट लफ्ट, लफ्ट'। कहत हैं लेनिन को यह कविता बहुत प्रिय थी। पप्पू ने अनुवाद किया था—

'बाया कदम,
कि बाया कदम,
कि बाया कदम चलें सब साथ।'

इसी अनुवाद-काल की रोचक घटना याद आ गयी। पप्पू की मेज पर

मायकोव्सकी की कविताओं का संकलन पड़ा हुआ था। प्रायः पन्द्रह-बीस कविताओं का अनुवाद कर चुका था वह। उस दिन आगरा के एक बड़े नेता पप्पू के घर आये। काफी देर बातें कीं। चलते चलते संकलन पर नजर पड़ी तो बड़ी मासूम संजीदगी से पप्पू को उपदेशात्मक मुद्रा में कहने लगे, 'मायकोव्सकी? बड़ा अच्छा लेखक है रूस का। पप्पू, पढ़ा करो, रूसी साहित्य पढ़ा करो। खासकर मायकोव्सकी और पुश्किन का। बड़े महान लेखक थे ये दोनों। कैसे कैसे उपन्यास लिख गए हैं! आहा मजा आ जाता है उन्हें पढ़कर।"

हम दोनों उन्हें देख रहे थे और देख रहे थे एक-दूसरे को। मायकोव्सकी और पुश्किन उपन्यासकार? सौभाग्य से नेताजी बाहर निकलते-निकलते ही यह 'नयी' और नितान्त मौलिक सूचना दे गए थे। उनके चले जाने के बाद मैं तो पेट पकड़ कर हँसे जा रहा था, और पप्पू दांत पीसता रहा था काफी देर तक।

सन् 1944 से ही कम्यूनिस्ट पार्टी जोर शोर से आंदोलन करती चली आ रही थी कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते के लिए। यह साफ साफ दिखायी देने लग गया था कि अंग्रेज अब और ज्यादा दिन भारत पर राज्य नहीं कर सकेंगे। स्वतन्त्रता के लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग के पारस्परिक मतभेदों का समाप्त होना बहुत आवश्यक प्रतीत होने लग गया था, क्योंकि यही वह दरार थी जिसको अंग्रेज सरकार बराबर चौड़ा करती चली जा रही थी हमारे देश पर 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' राज्य करते रहने के लिए।

अतएव कम्यूनिस्ट पार्टी ने नारा दिया था कांग्रेस के नेताओं को अविलम्ब जेल से छोड़ दिये जाने का और गांधीजी तथा जिन्ना के बीच समझौता होने का। बंगाल के अकाल की छाया अभी भी देश पर मंडरा रही थी। यह स्पष्ट हो चुका था कि साम्राज्यवादी शासक ऐसे ऐसे अनेक घृणित षडयन्त्र कर हमारे देश में भूख और महामारी का ताण्डव नृत्य करवाते चले जाएंगे। चर्चिल से और आशा भी क्या की जा सकती थी?

कम्यूनिस्ट पार्टी की इस नीति के समर्थन में पप्पू ने एक बड़ा प्यारा गीत लिखा था—

"बापू बोल, बोल बोल,
यह है देश की पुकार,
जिन्ना बोल, बोल, बोल,
यह है देश की पुकार।
सोन की इस बग भूमि म
मचता हाहाकार,
मानवता से टकराया है
मकालो का ज्वार। बापू बोल
आज करोडो की आशा की
तुम दानो पतवार
रूठे माझी हाथ बढाओ
डूब रही है नाव। बापू बोल '

यह गीत उन दिनो बहुत लोकप्रिय हुआ था। नगर नगर म कम्यूनिस्ट कायकर्ताओ की टोलिया प्रभात फेरी लगात समय यह गाना गाया करती थी। पप्पू ने इसे लिखा भी प्रभात फेरियो म गाये जाने के लिए ही था।

सन् 1945 के प्रारम्भ से ही यह लगने लगा था कि अब हमारी मित्र मण्डली क बिखरन के दिन आ चले। पप्पू ने रिसच करने का निश्चय कर लिया था। 'गोरखनाथ और उनके युग' पर काम करने लग गया था। शान्ति निकेतन जाना पडेगा हजारी प्रसादजी द्विवेदी के पास, यह विचार उस काफी आनन्द दिया करता था। 'आचाय' द्विवेदी के पास जायगा टी० एन० बी० 'आचाय'—बडे गव म कहता था। 'बाणभट्ट' और 'चारुचन्द्र लेख' तब तक प्रकाशित हो चुकी थी जिनके कारण शान्ति निकेतन के 'मास्टरजी' समस्त हिन्दी जगत के 'आचाय द्विवेदी' बन चुके थे। उनके सान्निध्य म रहने का उत्साह पप्पू के हृदय म होना स्वाभाविक ही था।

इस वष जयराम भारद्वाज और मैं एम० ए० की परीक्षा दन वाल थे। गत वष मरी विमाता की मृत्यु हो जाने क बाद से ही मेरे पिताजी ने रट लगा दी थी कि एम० ए० की परीक्षा समाप्त होते ही वे मेरा विवाह

सम्पन्न करवा कर ही दम लेंगे। उनका वश चलता तो जब मैं मिडिल पास हुआ था तभी मेरा विवाह कर चुके होते। राजस्थान मे तो आज भी मिनिस्टर तक अपनी नाबालिग पुत्रियो का विवाह धूम धड़ाके से कर दिया करते हैं। मेरे पिताजी भी राजस्थान मे ही रहते थे।

जहा तक आज याद आ रहा है, इसी वर्ष के प्रारम्भ मे उदयशंकर अपने ग्रुप के साथ आगरा आए थे। उन दिनो उनका नृत्य-कला-केन्द्र अलमोड़ा मे था। उसी केन्द्र की सहायतार्थ धनराशि एकत्रित करने के विचार से वे नगर नगर घूम रहे थे। साथ मे थे महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त।

हमने जब सुना कि पन्तजी आगरा आये हुए हैं तो तुरन्त निश्चय कर लिया कि यदि सभव हो तो अगले दिन प्रगतिशील लेखक सघ की बैठक मे उन्हे बुलाया जाय। 'ग्राम्या' के प्रकाशन के बाद पन्तजी प्रगतिशील लेखको के भी बहुत प्रिय हो गये थे। स्वर्णधूलि तथा 'स्वर्णकिरण' का प्रकाशन अभी नही हुआ था। गाधीजी के साथ-साथ मार्क्स पर भी कविता लिखने वाले पन्तजी हमे अपने लग रहे थे तब।

उन्हें निमन्त्रित कर लाने का भार दिया गया पप्पू और मुझको। उदयशकर का दल ठहरा था आगरा कैंट के एक होटल मे। उस दिन, हम दोनो कुछ जल्दी ही निकल पड़े थे, अतिरिक्त उत्साहवश। रास्ते मे ही सोचा कि अभी तो पतजी भोजन के पश्चात् आराम कर रहे होगे। हम शाम के चार-साढे चार बजे उनके पास जाएगे। तब तक आगरा के लाल क़िले के पास घूमते वक्त बिता लें।

एम०ए० के मेरे सात प्रश्नपत्रो मे एक शिवाजी तथा पेशवाओ सबधी था। उन दिनो मैं शिवाजी घोट रहा था। आगरा के किले के पास भटकते-भटकते याद आया कि इन्ही टीलो-खण्डहरो मे कही रहा होगा राजा जयसिंह का निवास-स्थान और यही कही बदी बनाकर रखा गया होगा शिवाजी को। टीलो पर उतरते चढ़ते हम शिवाजी की स्मृति मे मग्न हो गए थे। दोनों जेबो मे भर ली थी मूगफलियां। उन्हे छीलते चबाते चले जा रहे थे सत्रहवी शताब्दी मे।

सहसा हमने स्वयं को एक छोटे से क़ब्रिस्तान मे पाया। इसाइ

कब्रिस्तान म । किले से कुछ ही दूर । जरा देर दम लेने के विचार से वहा जा बैठे । एक कब्र पर नजर पडी तो हम चौके । मृत्यु तिथि थी मई 1857 की । अब जो आस-पास की कब्रें देखनी शुरू की तो पता चला कि समस्त कब्रें मई 1857 के तीन चार दिनो म मर लोगो की थी । गदर म मारे गये अग्रेजो—स्त्री पुरुषो की । उनम दो तीन कब्रें पाच सात वष के बच्चो की भी थी ।

अब शिवाजी तो तिरोहित हो गये । हम पर सवार हो गया 1857 का सग्राम । कुचक्री अग्रज व्यापारियो द्वारा धन लोलुप भारतीय राजा-रजवाडो को हल्लू बना कर एक समूच देश को हडप बैठने की साजिश के विरुद्ध कुछ स्वतत्रता प्रेमी छोटे छोटे राजाओ जमीदारो द्वारा लडा गया सग्राम । तात्या टोपे, कुवर सिंह, रानी लक्ष्मी बाई, नाना साहब—एक एक कर सबका स्मृति-तपण किया था हमने उस ढलती दोपहरी म । और साथ ही किया था यह अनुभव भी कि युद्ध कितना नृशस बना देता है मनुष्य का कि उस पाच वर्षीय दुधमुहा भी अपना शत्रु नजर आने लगता है जिस मार कर ही शा त हो पाता है वह ।

बातो ही बातो म समय कब बीत गया पता ही न चला । शाम होने लगी तो हम जा पहुचे होटल । दरवाजे से ही शुरू हो गया था बगीचा । वृक्षा के नीचे जहा तहा खडे थे महान नतक उदयशकर के दल के युवक-युवतियो के युग्म । उनकी उपस्थिति के कारण बडा वायवीय बन गया था वातावरण । कब्रिस्तान की ठास वास्तविकता से एकदम विपरीत ।

उदयशकर होटल के सामने की सीढियो पर खडे टोस्ट पर मक्खन लगा रहे थे । जब हमन पतजी से मिलन की इच्छा प्रकट की तो वही स खडे खडे उन्होने आवाज लगायी—'पतजी, देखिये आपसे मिलने आये हैं ये लोग ।" सचमुच बेहद खूबसूरत थे उदयशकर, देवताओ सरीखा वदन मिला था उनको । हम टकटकी बाधे देखते रहे थे उनकी ओर ।

उदयशकर की आवाज पर पतजी बाहर निकले । पहली बार देख रहे थे हम उस अनुपम लालित्य की राशि को । पतजी ठीक वैसे ही थे जैसे हम उनकी कल्पना करते आ रहे थे । कक्षा पाच मे पढते थे तब स । वे ही घुघराले बाल खात कधो । ठीक वही चश्मा, जिसकी सुनहरी

कमानी उनकी कनपटी पर उगे बालों के साथ साथ ही मुड़ जाती थी। आज त्रेसठ वर्ष का होने पर भी मैं उस शाम को, उसके एक एक क्षण को, उदयशंकर और पंतजी के उदात्त पौरुषेय सौन्दर्य को, बिना तरल हुए दुहरा पाने में असमर्थ हो रहा हूँ, इसी से अन्दाज लगा लीजिये क्या स्थिति रही होगी हमारी उस समय। तब तो हम दोनों ने बाईस वर्ष पूरे नहीं किये थे।

पंतजी तो नहीं आ सके थे हमारी गोष्ठी में। दूसरे दिन उनका बहुत व्यस्त कार्यक्रम था और तीसरे दिन उन्हें प्रस्थान करना था। परन्तु हमें पंतजी ने ज़िद करके दूसरे दिन होने वाले शो के चार पास दे दिये। गए थे निमंत्रण देने खुद निमंत्रित होकर आ गये।

दूसरे दिन पप्पू, जयराम भारद्वाज, व्रजराज सिंह और मैं—हम चार जा पहुँचे 'ताज टॉकीज़'। व्रजराज सिंह मेरा सहपाठी था। राजनीति में बहुत दिलचस्पी थी उसकी। कम्यूनिस्ट नहीं था वह तब भी। दबे दबे शब्दों में विरोध ही करता रहता था। किन्तु था हमारी गोष्ठी का सदस्य। आगे चल कर वह पार्लियामेण्ट का सदस्य और अपने समाजवादी ग्रुप का नेता भी चुना गया था। फिर एक दिन अखबार में पढ़ा कि उसका देहान्त हो गया।

उदयशंकर के प्रोग्राम का आरम्भ ही पंतजी द्वारा अपनी दो कविताओं के पाठ से हुआ था। पंतजी से उनकी कविताएं प्रत्यक्ष सुनना था तो मेरे जीवन की बहुत बड़ी घटना थी। याद भी रखे हुए हूँ उस स्मृति को आज तक। तथापि, स्वीकार करूँ कि उनका कण्ठ कुछ अधिक ही कोमल था। पाठ भंगिमा भी अधिक प्रभावशाली नहीं थी। निराश हुए थे हम—कविताओं से नहीं, उनके पाठ से। निराला, दिनकर, बच्चन—यहाँ तक कि महादेवीजी भी इस क्षेत्र में उनकी अपेक्षा अधिक गहरी छाप छोड़ गई हैं।

किन्तु जब उदयशंकर ने पंतजी की 'मुक्त करो नारी को मानव' के आधार पर अपना नृत्य प्रस्तुत किया तो हम अश-अश कर उठे। पंतजी की उस अमर रचना की गरिमा में चार चाँद लगा दिये थे उस अप्रतिम, नृत्य के जादूगर ने। और फिर जब उसका 'टाइम मशीन' आया तो सच-

मुच अवाक रह जाना पडा था। कला के किस सोपान पर चढ़ गये थे उदयशकर, इसका अदाजा आज का युग नही लगा पायेगा।

उस रात्रि का अतिम नृत्य था 'राजहस की मृत्यु'। उन्होने प्रख्यात रूसी बलेरिना, अन्ना पावलोवा, से सीखा था यह नृत्य। मैंने पावलोवा के नृत्य की फिल्म भी देखी है। नही कह सकता कि कौन किससे बढकर था। कही पढ़ा था, 'राम रावणोर्युद्ध राम रावणोरिव'—राम और रावण का युद्ध राम और रावण द्वारा ही लडा जा सकता था। अन्य किसी के भी बूते के बाहर था वैसा लड पाना। ठीक यही बात पावलोवा और उदयशकर के 'राजहस की मृत्यु' के बारे म कही जा सकती है। केवल पावलोवा और केवल उदशकर ही उस कोटि का नृत्य प्रस्तुत कर सकते थे। पन्तजी को कोटिश धन्यवाद कि उन्होने हमे यह अवसर प्रदान कर दिया।

अप्रैल मे मेरी परीक्षायें प्रारम्भ हो गइ। केवल तीन पेपर देन थे। अतिम पेपर निबन्ध का था। 12 अप्रैल को मैं अकेला ही ठडी सडक पर सायकाल घूम रहा था। मन उदास-उदास था। कुछ ही देर पहले रेडियो पर अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की सहसा हृदयगति रुक जाने स हुई मृत्यु का समाचार सुना था। रूजवेल्ट भारतवष की स्वतन्त्रता के बडे मजबूत प्रयास कर रहे थे। चर्चिल पर अन्दर ही अदर दबाव डालते रहते थे। काहिरा तथा तेहरान मे चर्चिल एव स्तालिन क साथ हुई बठका म उनका रुख चर्चिल की अपेक्षा कही अधिक जनवादी था। नाजी फौजो के विरुद्ध पश्चिमी यूरोप म एक दूसरा मोर्चा खुलवाने के सोवियत प्रयासो की सफलता की पृष्ठभूमि म रूजवेल्ट का नेतत्व था।

अब जबकि सोवियत सेनायें बर्लिन के निकट पहुची थी और जबकि महायुद्ध के समाप्त होने के आसार स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे थे, रूजवेल्ट का निधन दुर्भाग्यपूण लगा था मुझे। उपराष्ट्रपति ट्रूमेन का व्यक्तित्व प्रभावशाली था ही नहीं। 'अब क्या होगा' का प्रश्न मुझ तग कर रहा था।

दिल्ली दरवाजे के पास पहुचा तो लाखन पण्णू और कमलेशजी मिल गये। रूजवल्ट का शोक उन पर भी छाया हुआ था। पर तु हम सब आश्वस्त थे कि उनके देहान्त का कोई प्रभाव युद्ध पर नही पडेगा। जनरल आइसनहॉवर और मॉटगोमरी के नेतृत्व मे अमेरिका और इगलण्ड की

तथा मार्शल जुकोव की कमान म सोवियत यूनियन की फौजें बडी तजी से हिटलर गोर्यरिंग की समस्त विश्व को पददलित करन की अभिलाषाआ का जनाजा निकाले दे रही थी। बर्लिन का पतन अब हुआ—तब हुआ की स्थिति मे था।

उसी दिन पप्पू और लाखन दोनो न मेरे विवाह के सम्बन्ध म विस्तार से चर्चा की थी। आगामी 27 अप्रेल को विवाह होन वाला था। पप्पू की बडी इच्छा थी बारात में जाने की। परन्तु जब मैंने उसे बताया कि वह हमार साथ एक पक्ति मे बैठकर भोजन तक नही कर पायेगा, क्योंकि चालीस वष पहले हमारे बडे-बडे नागरो के अतिरिक्त और किसी क साथ बैठकर खाना नही खा पाते थे, तो वह बहुत निराश हुआ था।

13 अप्रेल को मेरा आखिरी पेपर समाप्त हुआ और 19 को मैं चला गया दिल्ली अपनी बहिन को लिवाने। लौटकर मात्र एक दिन आगरा रुका और फिर निकल गया राजस्थान विवाह के लिए। विवाह के बाद जब मैं सपत्नीक अपने पैतक नगर, बूदी, पहुचा तो समाचार पत्रो म ज्ञात हुआ था कि एक रात पहले ही इटली के फासिस्ट-विरोधी गुरिल्ला छापामारो न मुसोलिनी को गाली मार दी थी। एक बडे अन्यायी राक्षस की समाप्ति क बाद उसका अभिन्न मित्र हिटलर भी अपन जीवन की अन्तिम श्वास लेन लगा था। महायुद्ध की विभीषिका का अन्त स्पष्ट दिखाई देने लग गया था।

बूदी रहते ही मैंने जयपुर के निकट चलाये जाने वाले वनस्थली विद्यापीठ मे अध्यापकी की दरख्वास्त दे दी थी और शीघ्र ही वहा मेरी नियुक्ति भी हो गई। आगरा छूटने जा रहा था—आगरा जहा मेरा जन्म हुआ था, मरी शिक्षा दीक्षा हुई थी और जहा जीवन के बाईस वष बिताये थे मैंने। आगरा, जिसका गत चार पाच वर्षों म मेरे लिए कवल मात्र अथ रह गया था पप्पू लाखन, जयराम भारद्वाज और इन सरीखे अनेक प्यारे-प्यारे मित्रो का अहर्निश हसी ठहाको भरा साथ।

आज याद करता हू तो हसी आती है कि आगरा से अपनी किताबें और थोडा सा सामान बटोरकर जब आगरा फोट स जयपुर जाने वाली ट्रेन मे मैं बैठा था तो गाडी के प्लेटफाम छोडते ही मेरी आखो ने जो आसू बहाने

शुरू किये थे वे भरतपुर तक बहते ही रहे थे। इसके पहले, और इसके बाद मैं, अपने आंसुओं के सामने इस कदर कभी बेबस नहीं हुआ।

आगरा छूटा तो छूटा, पप्पू भी छूट गया। 1945 के बाद आगरा जाना तो बराबर जारी रहा, किन्तु वहां हफ्ते दस दिन रह पाना और सभव नहीं हो सका। वनस्थली विद्यापीठ मे अध्यापकी करते हुए एक बार आया तो बाग मुजफ्फर खा मे घुसते ही सुन्दर सिंह मिल गया। "अबे आजकल क्या कर रहा है?" वे उत्तर मे पता चला कि हजरत अदालत म अर्जीनवीस हो गए हैं। "यू नो पाटनर, माई टोटल इनकम फ्रॉम मीन्स बोथ आस्टेंसिबिल एण्ड नॉट सो आस्टेंसिबिल टोटल्स अप टु हण्ड्रेड टवन्टी नाइन रुपीज़, इलेविन आनाज़। (मेरी आमदनी वैध और अवैध दोनों ज़रिया को मिला कर कुल जमा 129 रु० 11 आना है।)

और पप्पू वह अपनी शोध म लग गया था। शाति निकेतन लखनऊ और आगरा के बीच झूलने लग गया था वह। मैं जब भी आगरा गया, और यदि वह वही हुआ, तो बडे तपाक स मिलता "अबे फिर चला आया, चूतिया नन्दन?" और इसके बाद एक प्रगाढ आलिंगन जिसमे भिच कर एक दिन तो मेरे चश्मे के दो टुकडे हो गए थे और इसके बाद हम दोनो का उन्मुक्त अट्टहास सडक चलते लोगो को ठिठका दिया करता था।

किन्तु वक्त बीतने के साथ साथ आलिंगन का कसाव तो ढीला न हुआ हो, मिलने के अवसर ही कम और कम होते चले गए। वनस्थली मे एक वर्ष पढाकर मैं राजस्थान मे कम्यूनिस्ट पार्टी का काम करने लग गया था। आये दिन जेल जाना रहता था। पप्पू क्रमश कम्यूनिस्ट पार्टी से दूर होने लग गया था। अब उसकी धमनियो म उस द्रविड का तप्त लोहू खौलने लगा था जो 'वर्णदभी जातिदर्पी गौर आर्यों से गरज कर' लडा था। उसकी यह प्रसिद्ध कविता जब मैंने वनस्थली रहते पढी थी तो मैं काफी चौंका था। पप्पू की कविता का मुहावरा बदल चला था, अर्थात पप्पू बदल चला था।

बहुत शीघ्र ही पप्पू न पप्पू रहा न आचार्य। अब मैं आगरा जाता तो उसे उन लोगो से घिरे देखता जो उसे 'डाक्टर साहब' कहा करते थे। उमे कहने वालो की सख्या तेजी से कम होती जा रही थी। एक दिन 'बाबू

के रंगरा' में पप्पू ने मनमोहन आकाशदीप से मेरा परिचय करवाया, 'यह मनमोहन है, बड़े अच्छे गीत लिखता है। मिल लगा। जब मैंने उन गीत कविवर घनश्याम की 'आस्था पथ' से छोटी कविता की बात बताई तो वह यह जानकर बड़ा आश्चर्य में पड़ गया था कि नारूमपुरा निवासी घनश्याम को मैं उसके बचपन से जानता हूँ। घनश्याम के चाचा पूरनचन्द अग्रवाल, मेरे छठी-आठवीं कक्षा के सहपाठी थे। सेण्ट जॉन्स हाई स्कूल में जब मैं नवीं कक्षा में पढ़ रहा था तो घनश्याम ने तीसरी कक्षा में दाखिला लिया था। पप्पू द्वारा परिचित कराये जाने के बाद, डॉ० घनश्याम अग्रवाल मेरे भी घनिष्ठ मित्र बन चुके हैं।

आज याद आ रहा है, 1947 का वह दिन जब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मैं आगरा गया था। पप्पू ने अपनी बैठक में उच्छ्वसित स्वर में 14-15 अगस्त की मध्य रात्रि का विवरण बताते हुए कहा था, 'जब सुचेता कृपालानी ने दारुण निस्तब्ध मौन में सब मग्न हो बाजे गाया तो मनमोहन, तब एक-एक रोम झंकृत हो उठा था यार।' मैं तो उस ऐतिहासिक क्षण में पूरी जेल में बन्द था। कहाँ से अनुभव कर पाता वह पुलक!

1949 में मैं कलकत्ता चला आया और घटना प्रवाह में बहता एक मारवाड़ी संस्थान में नौकरी करने पर बाध्य हो गया। पत्नी के आग्रह पर पैंट शर्ट पहन कर दफ्तर जाने लगा। एक बार पैंट शर्ट पहनकर आगरा जा पहुँचा। पप्पू उन दिनों स्वदेशी बीमा नगर में रहने लग गया था। उसके घर पहुँचा तो छूटते ही बोला, 'अबे यह क्लर्कों की पोशाक कब से पहनने लगा?''

उसकी भविष्यवाणी सच्ची थी। अगस्त 1952 में मैंने सिंधिया स्टीम नैविगेशन कम्पनी की कलकत्ता शाखा के कैश विभाग में क्लर्की करना शुरू कर दिया। महानगर के सैकड़ों दबावों को झेलता, प्रत्येक महीने रुपया का अभाव सहता मैं किसी प्रकार दुक्खम-सुक्खम, अपना कालयापन कर रहा था। कुछ दिनों पूर्व ही स्तालिन का निधन होकर चुका था। मैं बहुत उदास था उन दिनों। मार्च 1953 का महीना था। पप्पू का एक ढाई पंक्तियों का पोस्टकार्ड मिला, होली से पहले। लिखा था, 'कल रात बड़ी देर तक प्रासिता की याद आती रही। तेरी भी आई। क्या देख रहा है इन दिनों?'

पप्प का पत्र पाकर अन्दर तक हिल उठा था मैं। क्या लिखू, कैसे लिखू? जब लिखने बैठा तो निम्न कविता के शब्द स्वत उभर उठे—

पप्पू प्यारे,
पत्र तेरा मिल गया था आज स कुछ दिवस पहले ।
किन्तु उत्तर दे सकू बाकी न थी क्षमता तनिक भी,
क्योकि मनमोहन कि जिसकी हास्य ध्वनि सुन गूज उठता
रेस्तरा था, मर चुका कुछ दिवस पहले। जिन्दगी यदि
नाम है जिन्दादिली का, तो यही कहना उचित है—आज
तो शव जी रहा है।

आज रह रह याद आते—किशन, बाबू और लाखन।
और सुन्दरसिंह भारद्वाज—
सब ही झिलमिलाते तारको सम हृदय पट पर।
और सच तो है यही—
यह याद ही इतनी सुखद है सास जिसस चल रही है आज भी।

तुम कहा करते सदा थे—
इन्कलाबी हो नही सकता कभी भी मध्यवर्गी युवक सच्चे मायनो मे।
क्रोध आता था इसे सुन।
तर्क करता था कि लेनिन,
वह महत्तम पुरुष जिसने सर्वहारा वर्ग का शासन जमाया रूस म था,
कौन था? था मध्यवर्गी।
स्वय एगिल्स, मार्क्स दानो थे इसी ही वर्ग की सन्तान

आज पर लगता मुझे है
तथ्य था इस बात म कुछ
अन्यथा किस भाति सभव हो सकी यह बात
जिसस वह
कि जिसने शख फूका जागरण का उस नगर मे
जो युगो से था सुरक्षित दुर्ग सामन्ती, झुका पाई थी न जिसको

मिलिटरी कारागृहों की, और जितने, तुच्छ गहने व प्रलोभन,
जो अहिंसा सत्यवादी क्रांतियों ने सैकड़ों ही बार
उनके सामने साग्रह रखे थे,
आज तो वह रह गया है
एक कामन कलक !

बन गया है एक पुर्ज़ा
उस अपूर्व विराट चक्की का
कि जिसमें पिस रहे मज़दूर साथी।
कर रही शोषण सतत
जो साथियों का सबरों का,
जो पलासी से लन्दन तक
निरंतर लिप्त प्रथा की कम्पनी में।

आज की चिंता बताऊँ है मुझे क्या ?
कैशबुक का रोज़ ही मिल जाय मेरा बैलेंस।
हृदय चाहे चाहता हो दौड़ जाना उस सभा में,
शोक से आकुल जहाँ लाखों युवक-युवती खड़े हों मौन, उसकी याद में
जो था मसीहा
इस शती के विश्व के हमसे करोड़ों मानवों का।
किंतु जब तक मिल न जाए कैशबुक बैलेंस,
वाउचर डिस्पैच करके दे न दूँ
छुट्टी कहाँ है ?

आज मेरा अहम् मुझसे कर उठा विद्रोह,
तान मारता है।
कान में विद्रूप से है गुनगुनाता शेर अकबर का निरन्तर
"क्या कहूँ अहवाल, क्या कारे-नुमायाँ कर गए,
बी० ए० किया, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गए।"

तिलमिला उटठा इसे सुन
चाहता हू ताड फेंकू आहनी अदृश्य बधन
जो अभी जकडे मुझे ह
गुलामी म नौकरी म ।

किन्तु तब,
तत्काल ही हैं घूम जाते चक्षु सम्मुख वे
कि जिनसे मिल बना परिवार मेरा

वद्ध वह मेरे पिता
अरमान जिनके थे सभी केद्रित मुझी मे
ताश के पत्तो सदृश पर महल जिनका ढह चुका है ।

और वह सुकुमारि,
जिसका हाथ लेकर हाथ म,
मैं चल पडा जीवन डगर पर ले हजारा साध मन म
नयन-पलका पर कि जिसको चाहता रखना सदा था
किन्तु ढोना पड रहा है
जिदगी का भार जिसको ।

और नन्हा दीप
मेरी देह का जो देह
मेरी श्वास का जो श्वास,
मेरे प्राण का जो प्राण,
कर दिया जिसन उजाला, तीन वर्षों पूव घर मे
आज जब वह रुग्ण होता, खोजता हू एक होम्योपैथ ।
काश, तुम अनुमान कर पाते पिता की भावनायें
जब कि मित्रो बीच कहता हू
कि मेरे पुत्र को अच्छा न लगता दूध किंचित

क्योंकि मैं पाता नहीं हूं, एक दरद भर वह पानी
कि जिसमें घुल रहा हो दूध मां का।

मानता हूं,
शक्य है प्यार ही क्या
पाराम अवसाद में, नैराश्य में,
जो योग्य हो सकता नहीं उस व्यक्ति के
जग जिसे है आज भी समझे हुए कम्युनिस्ट
आज भी जो आस्था रखता अनवरत मार्क्स-लेनिन और
स्तालिनवाद में।
है जिसे विश्वास, होगा फिर नया निर्माण इस जग का
कि जिसमें आज तक संतान मनु की
बिताती अपनी जवानी दैन्य में, दारिद्र्य में।

मानता हूं सत्य है यह
पर सखे
है सत्य यह भी
आज तो डूबा हुआ हूं गहनतम जीवन उदधि में।
क्षमा करना,
इसलिए यदि आ न पाऊं मूड में जिसमें कि उत्तर स्वतः ही लिख
जाय उस स्ट्रेन में जिसमें लिखा है पत्र तुमने।

पत्र की लेकिन तुम्हारे, मैं करूंगा फिर प्रतीक्षा।

—मैं, तुम्हारा मित्र,
मनमोहन

पप्पू ने उत्तर दिया था, "कविता अच्छी है। तू रोता है तो बड़ा अच्छा लगता है।"

इसके पश्चात बहुत दिनों तक कोई सम्पर्क नहीं रहा हम दोनों के

मध्य। पप्पू आगरा छोड़कर अपने गाव, घर, म रहन लग गया था। 1956 मे उसने विवाह कर लिया। आगरा गया ता सूचना मिली थी।

1958 मे एक बार जयपुर पहुचा तो मरे प्रिय कवि मित्र, जगदीश चतुर्वेदी ने बताया कि डाक्टर साहब यही रहने लगे हैं। जगदीश के साथ उसके घर पहुचा। बाहर स ही पता चला कि वह अपनी पत्नी को दिखाने अस्पताल गया है। हम दाना अस्पताल ना पहुचे। देखा पप्पू चला आ रहा है। सुलोचनाजी को रिक्शे मे बठाकर घर भेज चुका था, स्वय दवा खरी दने पैदल पैदल जा रहा था।

बडा धक्का लगा था उसे देखकर। सिर पर गाधी टोपी उडे हुए बालों को ढकने का असफल प्रयास कर रही थी। काफी दुबला हो गया था। परन्तु उसकी आत्मीयता मे कहीं कोई कमी नहीं आयी थी। उसी तपाक से मिला था उस सुबह भी जैसे आगरा म मिलता रहता था। उसने बताया कि अम्मा भी वहीं हैं। हम दोनो घर गये। अम्मा बडी प्रसन्न हुई थी मुझे देखकर।

उन दिनो मैं बहुत ऊचा सुनने लगा था। पप्पू ने अम्मा को ज़ोर से बोलने को कहा, 'साला बहरा हो गया है।' अम्मा ने आवाज मे असीम करुणा घोलते हुए पूछा, 'अरे बेटा जे कैसे हैगो?" मैंने बडी निरीह मुद्रा मे उत्तर दिया, "ऐसा है अम्मा कि मुझे सिंधिया यूनियन के चक्कर मे अक्सर हवाई जहाज से बम्बई आना जाना पडता है। इसलिए कान खराब हो गए हैं।" और फिर तुरन्त पप्पू की ओर मुखातिब होकर मैंने उसी निरीह मुद्रा म उसस पूछ लिया, "पप्पू, तूने कभी हवाई यात्रा की है?' पप्पू दात पीसकर रह गया था।

काफी देर तक हमी मज़ाक करते रह थे उस दिन। सुलोचनाजी से साक्षात्कार नहीं हो पाया था। वे अस्वस्थ जो थी।

इसक बाद 1959 लगते ही अम्मा के देहान्त का समाचार मिला। मैं जानता था कि पप्पू को अम्मा स कितना अधिक प्यार था। अम्मा ने भी पप्पू के प्रत्येक मित्र को पप्पूवत ही समझा था। बडा दुख हुआ था इस अप्रत्याशित समाचार से। मैंने पप्पू को समवदनात्मक पत्र लिखा। उन्हीं दिना उसका एक उपन्यास पढ़कर समाप्त कर चुका था। आज उस

उपन्यास का नाम याद नही आ रहा। वह उप यास मुझे कतई अच्छा नही लगा था। 'गदल' जैसी कहानी का सशक्त लेखक और इतनी कमज़ोर रचना! पत्र मे मैंने लिख दिया कि तेरा उपन्यास पढकर अफसोस हुआ।

बस, काफी था पप्पू के आहत अहम के लिए यह वाक्य। उस मुझमे कम्यूनिस्ट पार्टी दीख रही थी, 'शांति के पुत्र का प्रतीक लग रहा था मैं, और उसने झल्लाया हुआ पत्र लिखा, "अभी तो तुम्हें अफसोस ही हुआ है? मैं अभी और भी लिखूगा जिसे पढकर तुम आठ आठ आसू रोओगे।" मैं उसके लिए तू से तुम हो गया! गुस्सा मुझे भी बहुत आया। उसी रौ मे लिख बैठा—

"आदरणीय डॉक्टर साहब,

गलती मेरी थी। पत्र लिखा था पप्पू को और पता लिख बैठा डा० रागेय राघव का। याद ही नही रहा कि पप्पू तो कई वर्ष पहले ही मर चुका था। विश्वास कीजिये यह गलती दुबारा नही होगी।"

अब पप्पू मुझसे इस बात पर खफा हो गया था कि मैंने उसे मरा घोषित कर दिया था।

इसके बाद सिर्फ एक बार और भेंट हुई थी हमारी। वह भी घनश्याम की ज़िद पर। नतीजा वही हुआ जिसकी मुझे आशंका थी। बेहद बदमज़गी के वातावरण मे हमने एक दूसरे से विदा ली थी उस रात डा० आकारदेव की डिस्पेंसरी से। वह सब कैसे हुआ, इसकी कहानी घनश्याम ही लिख सकता है, मैं नही। क्योंकि, वह हमारी आखिरी मुलाकात थी। काश, उस दिन घनश्याम ने ज़िद करके हमे न मिलाया होता। तुर्शी से तो बच गयी होती मेरी यादें।

लेकिन, जो हुआ उससे कही कोई फर्क नही पडता। पप्पू के साथ हुई यारी, उसके साथ बिताये गये पाच वर्षों की सुनहली स्मृतिया, किसी भी एक ज़िन्दगी को मुअत्तर बनाये रखने के लिए काफी हैं। उनके मुका-बले मे एक-दो कडवी यादें भी जुड जायें तो अच्छा ही है। मीठी यादें दोबाला हो उठती हैं।

आगरा अब भी जाता हू। बाग मुज़फ्फर खा की सडक को आगरा कॉरपोरेशन ने 'डॉक्टर रागेय राघव मार्ग' बना दिया है। बाबू का रेस्तरा

अब कहा है, पता नहो। स ट जॉस कॉलेज आज भी सूली सर पर लादे खडा है।' केवल नहीं है ता यारो की टोली नहो है, जिनके साथ रोज दस बारह घण्टे बीतत थ, वर्षों तक। आज तो उधर से गुजरो पर एक पक्ति बडी शिद्दत से माथे म गूज उठती है—

जा थल की है बिहार अनेकन
ता थल काकरी बैठि चुन्यो करें।

डर लगता है कि कुछ वप बीतते न-बीतत उस सडक का नाम भी सिकुड सिमट कर कही डी० आर० आर० रोड न रह जाय। और, यह साचकर कि अगर लोगा न उसे हिन्दी मे डा० रा० रा० मार्ग कहना शुरु कर दिया तो पप्पू बडी जार से खिलखिला कर हस उठेगा, कहेगा, "देख साले, क्या छाटकर नाम रखा था मैंने? सुनकर लगता है न कि सितार का झाला बज रहा हो।"

□□